● प्रकाशिका:-

सत्यभामा

संघर्ष प्रकाशन

रतनगढ़ (राजस्थान)

● आलेख्यकार:-

सत्यदेव 'सत्यार्थी', जयपुर

● प्रथमावृत्ति:-

जनवरी, १९५८

● मुद्रक:-

विश्वनाथ शर्मा

विश्व ज्योति प्रेस

रतनगढ़ (राजस्थान)

प्रकाशकीय

प्रस्तुत कथा-संग्रह पाठकों के हाथों में देते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है. मुद्रण तथा अन्य साधनों के अभाव में भी यही प्रयास किया गया है कि इसका अंतरंग एवं बहिरंग दोनों ही आकर्षक और नयनाभिराम हों.

अंत में मैं अपने ढंग के एकमात्र आलेख्यकार श्री सत्यदेव "सत्यार्थी" जिनके मुक्तहस्त सहयोग के बिना इस पुस्तक का वर्तमान स्वरूप नहीं हो पाता— तथा श्री जगदीश शर्मा (संपादक 'संघर्ष') के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ. इसके अतिरिक्त जिन जिन बंधुओं ने यथावसर प्रकाशन में सहयोग दिया उन्हें भी धन्यवाद.

संघर्ष प्रकाशन
रतनगढ (राज०)

—सत्यभामा
(संचालिका)

ये कहानियाँ

मां भारती का भंडार तो संपन्न है, क्योंकि उसे युग युगांतरों की सुदीर्घ शृंखला में बहुत से सौभाग्यशाली प्रतिभा-पुत्र अपने सुचिंतन, मनन एवं जीवन में अनुभूत अनुभूतियों के तत्व और निष्कर्ष को किसी न किसी रूप में संचित करके भेंट करते आये हैं. लेकिन इससे क्या? उसके प्रत्येक आराधक को अपनी सामर्थ्यानुसार कुछ नैवेद्य तो अर्पित करना ही पड़ता है. वह आराधक ही क्या ? जो निशिद्योश साधना करके भी उसकी निधि का अभिवर्द्धन न कर सके.

मेरा भी यह चिर साध्य रहा है (भविष्य में भी रहेगा) वही आज हो रहा है. पत्रं पुष्पं जैसा भी है, आराध्य के लिए प्रस्तुत है.

... ...

ये कहानियां अपना छोटा सा इतिहास लिए हुए हैं. वह इतिहास क्या है? स्पष्ट करदूं.

सन् '५३ में मैं किसी कार्यवश मलाया गया और वहाँ लगातार' ५५ तक रहा भी.

मलाया जाने से पूर्व भारतीय पत्रों में यदाकदा वहाँ के संघर्परत अंडरग्राउंड कम्युनिस्टों के विषय में पढ़ा करता था, जिससे आभाष होता कि उनका उद्देश्य केवलमात्र वहाँ के जन-साधारण को संत्रस्त करना ही है. परन्तु जब वहाँ जाकर मैंने वास्तविकता देखी तो स्वतः ही मेरे मानस में मुक्ति के लिए मरने वाले कम्युनिस्टों के प्रति मैत्री और अपनत्व प्रादुर्भाव हो गया. मलाया की तत्कालीन अंगरेज सरकार का उनके विरुद्ध यह प्रोपेगेंडा कि वे "बैंडिट" (लुटेरे) हैं—देखकर मैं तिलमिलाया. इस विषय में मैं घंटों विचारता रहता. मेरे विचार, तिलमिलाहट एवं वहाँ की यथार्थता का सुफल "वह कम्यूनिस्ट था" की कुछ कहानियाँ हैं. इन कहानियों में असलियत का रंग अधिक और कल्पना का मुल्लमा अल्पांश में है. पाठक इन्हें पढ़कर मुझे कम्यूनिज्म का प्रचारक न मान बैठें, क्योंकि मैं किसी भी तरह कम्यूनिस्ट नहीं हूँ.

एक बात और—

"वह कम्यूनिस्ट था" की सभी कहानियाँ मलाया के राजनैतिक और सामाजिक जीवन से अटूट संबंध रखती हैं, अतः उनकी पृष्ठ भूमि तथा पात्र आदि भी वहीं के हैं. हो सकता है कि इससे पाठकों को कुछ दुरूहता का आभाष हो लेकिन यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए वह सह्य होनी ही चाहिए.

—सोमदेव शर्मा

अनुक्रम

(मुक्तिदूतों को ………… ‥)

वह कम्यूनिस्ट था

सिन-ही-फट आह्ना को देख कर हंसा . हंसीके साथ ही उसके सोने से मंढे दांत भी झांकने लगे .

आह्ना ने पैडल मारते हुए कहा—

" सिन, आओ चले ! "

" नहीं आह्ना, देख नहीं रही कि आकाश बादलों के बोझ से टूटा जा रहा है . बादलों की आवाज मना कर रही है . " सिन-ही ने अपनी छोटी छोटी तेज आंखे, आह्ना की आंखों में डालते हुए कहा .

" ओह यों मत देखो ! " आह्ना ने साईकिल से नीचे उतरते हुए कहा .

" हाँ, मेरी आह्ना, में ठीक ही तो कह रहा हूँ . आज दूध कैसे इकट्ठा होगा ? अभी तो सवेरा है . देखना, शाम तक तो क्या, रात तक भी पानी का देवता सोयेगा नहीं . " सिन-ही यह कहता हुआ आह्ना के पास जा पहुँचा .

" क्या आदमी हो ? " कह कर आह्ना अपनी साईकिल के साथ पीछे हटी .

" आओ आह्ना, आज मेरे घर की मीं ॐ तो खाओ . फिर

ॐ "मीं" चाइनीज परिवारों का एक विशेप स्वादू खाद्य है, जिसे चावल के आटे से बनाया जाता है .

आज बरसते दिन में रबर इकट्ठा भी कितना कर पाओगी ? काम तो हमेशा ही चलेगा ." सिन-ही ने कहा . साथ ही आह्वा का हाथ पकड़ कर अपने घर की ओर चलने लगा .

" नहीं - नहीं सिन, आज रहने दो . रबर जितना इकट्ठा होगा, करूँगी . आते वक्त वेतन भी तो लाना है . न लाई तो शाम को चावल मच्छी का क्या होगा ? " आह्वा बोली .

" इतनी चिंता क्यों ? तुम्हारा यह सिन-ही-फट क्या काम आएगा ?" उत्तर था .

"नहीं, तुमसे कोई कर्ज न लूंगी . देना जो होगा ." यह कह कर आह्वा अपने सिर पर बंधा पीला कपड़ा माथे के आगे सरकाने लगी .

" आंह्वा, कल दे देना. न भी दो तो... पर हां, लोगी तो देना भी होगा ही । हाँ, यह कपड़ा खोल दो . बेचारे घुंघराले बालों की जान क्यों निकाले दे रही हो ? इन्हें हवा में उड़ने दो. " सिन ने कहा.

" यह सब बातें शाम को जँचती हैं; अभी नहीं . तुम्हें चलना है तो चलो, मैं तो यह चली. " आह्वा मुस्करा कर चलने को उद्यत सी हुई .

आह्वा के उभरे लालिमायुक्त गालों पर थिरकती मुस्कान ने सिन-ही के मन को बदल ही दिया

"ठहर तो आह्वा, मैं भी चलता हूं." सिन ने यह कहते हुए आह्वा की साईकिल अपने हाथों में थाम कर कहा " चल. पीछे बैठ ."

"मैं ले चलूं तुम्हें ?" आह्वा बोली !

" नहीं, तू मुझे क्या ले चलेगी ? चल आ. इस्टेट दूर है. तेरे पैर पैडल मारते - मारते थक जायेंगे . " सिन ने प्रतिरोध किया .

आह्वा पीछे कैरियर पर बैठ गई .

साईकिल पुरजोर से दौड़ने लगी।

"अह्चा!" सिन ने मोड़ पर साईकिल धीमी करते हुए कहा

"क्या?"

"हमारी दोस्ती हुए कितने दिन होगए?"

"बहुतेरे बीत गए और बीत जायेंगे. गिने मैंने नहीं।"

"अब तो हम काफी पास आगये."

"कहाँ?... इस्टेट के...... पर... हाँ... तब...?"

"तब?"

"उल्टा क्यों पूछते हो?"

"अपना एक घर बनालें!"

"एक घर बनालें!"

"हाँ!"

"अभी नहीं।"

"क्यों?"

"तुम्हीं कहो!"

"शायद तुम कहो कि हम कुली हैं, वह तो हैं ही, अब कहाँ के बड़े मालिक बन जायें? फिर शाम को तीन-चार डालर लेकर घर आते हैं. पर यह तो कुछ नहीं!" सिन की आवाज में भावुकता की बजाय गहरापन अधिक था.

"कुछ क्यों नहीं? है ही. हम सुबह से शाम तक जो कुछ अपनी जेब में डाल पाते हैं, वे कम रहते हैं. देखो न, पिछले माह मैं घड़ी खरीदना चाहती थी, पर न ले सकी. बालों की लटें मिटती जा रही है. बाल बढ़ आये हैं. इन्हें इस माह अवश्य ठीक करवाना है. लटें फिर से घनी करवानी हैं. शायद क्लिप लगवानी पड़े. न गले में हार, न हाथ में घड़ी, इससे मेरी सभी साथिनें हँसी उड़ातीं हैं. डालर बचा ही

नहीं पाती." आह्ला ने व्याख्या की.

"पर इससे हमें एक घर बनाने में क्या अड़चन आई? काम दोनों करते हैं. चावल मच्छी के सिवा हम अपनी अन्य आवश्यकताएं भी पूरी कर ही लेंगे."

"तुम दूर तक नहीं सोच रहे. कोई बच्चा होगा तब?"

"हां तब?"

"तब क्या? उसके लिए भी कितना खर्चा चाहिएगा?"

"तब?" सिन चिंता में पड़ गया.

"फिर?"

और वे दोनो इस 'तब' 'फिर' में खामोश रह गए.

वेदनायुक्त स्वर में सिन गुनगुना उठा—

"ङाय आकोंग,
ङाय छ्रेम आईश्व फत्रा."
("मेरे भगवान,
मैं इस फूल को पाना चाहता हूं.")

... ...

उस दिन के बाद कई दिन आये और गये.

सिन-हो-फट आह्ला पर मुग्ध था. वह जब भी एकांत पाता उसका विश्लेषण करने लगाता. उसकी मुस्कान मनमें गुदगुदी कर देती है. उस फिसलती मुस्कान पर मृदुलता. प्यार के शर्बत से लबालब उसकी गोरी और लाल बरौनियों के भीतर बैठी आंखें. पलकों का उठना और गिरना. सुगठित शरीर. बाजूछ और सलवार के भीतर दमकता आकर्षण. उरोज के उतार चढ़ाव. चाल की कोमलता. कटे साफ-सुथरे काले और घुंघराले केश. उनमें उठती लहरें. हां यही सब तो एक

छ बाजू=चीनी स्त्रियों के ब्लाउज की जगह पहनने का वस्त्र।

एक जवानी, दूसरी में निहार कर, फिदा की फिसलन पर पैर रख देता है. लेकिन ..

... ...

पत्नि से हजारों मील दूर, मि. वेस्टवाटर उस चाईनीज छोकरी पर मोह गए. आँखों में समाकर, कलेजे में उतर गई वह. सोचा—“ नशे में जब वह मेरी बाहों में होगी तब . ” पर यह सोचना उनका सदैव का धंधा चला आ रहा है. कोई नई बात नहीं. आये दिन कोई न कोई नई चिड़िया उनके दिल पर चहकती ही रहती है. ऐसा कोई भी दिन खाली नहीं गया कि इस्टेट के मजदूरों ने उनकी जीप में बगल से सटी सुनहरी चिड़िया फड़फड़ाते न देखी हो.

मि. वेस्टवाटर ने घंटी बजाई,

नौकर सामने था.

“ हेड क्लर्क. ” आज्ञा मिली.

नौकर लौट गया.

“ सर ! ” हेड क्लर्क मि. नाथन ने आकर कहा.

“ देख रहे हो ! ” यह कह कर वेस्टवाटर ने अपनी नजर खिड़की में से दूर एक छोकरी पर डाली.

नाथन ने भी अपने स्वामी की दृष्टि का अनुसरण किया. वह बोला:—

“ ठीक है. ”

“ धन्यवाद ! पर कब ? ”

“ आज ही. ”

“ सौ मैनी थैंक्स मि. नाथन ! ”

नाथन वापस अपने कमरे में लौट गया. खुश था कि उसकी जेब में डालरों का बोझ बढेगा.

... ...

उसी दिन.

आह्ला रबर का दूध बाल्टी में इकट्ठा करती हुई आगे बढ़ रही थी. जब एक बाल्टी दूध से भर गई तो वह सुस्ताने के लिए पेड़ की छाया में कुछ देर के लिए बैठ गई. बैठे बैठे उसे ध्यान आया कि सिर का पीला कपड़ा पीछे खिसक गया है. पेड़ के पत्तों में से छन कर आने वाली तेज धूप उसके मुंह पर पड़ रही थी. उसने कपड़ा खोल कर लहरीले छोटे छोटे केश ठीक किए. खोले हुए कपड़े को माथे के आगे तक सरकाकर बांध लिया. वह उठी ही थी कि उसे सुन पड़ा:—

"आह्ला...!"

आह्ला ने घूम कर देखा. नाथन था. उसे देख कर विस्मित हो उठी. इस्टेट का हेड क्लर्क, यहाँ और उसके पास, यह क्यों ? आश्चर्य से उसे निहारते हुए उसने पूछा:—

"क्या है ?"

"तुम्हारा भाग्य बड़ा अच्छा है." नाथन ने उसके पास आकर हंसते हुए कहा.

"मेरा ! यह क्या कह रहे हो ? नशे में तो नहीं हो !"

"मैं ठीक तो कह रहा हूं कि तुम्हारा..."

"तुम पागल हो. हम मजदूरों के भाग्य कहाँ ?"

"नहीं आह्ला, मैं ठीक कह रहा हूं."

आह्ला नाथन की स्थिर आवाज से आश्वस्त हुई, पर उसका मन अविश्वास की लहरियों से दोलायमान था. बोली:—

"जाओ काम करने दो."

और आह्ला बांस की कंघई में दोनों ओर बाल्टियां डालकर चलने लगी कि नाथन ने उसका हाथ पकड़ कर कहा:—

"रुको."

" कहो न, आखिर है क्या ? " आह्ला तिलमिला उठी.

नाथन अपने मालिक की होने वाली प्रेयसी की तिलमिलाहट अनुभव कर मुस्कराया. उसने कहा:—

" तुम्हें मि. वेस्टवाटर चाहते हैं. यह उन्होंने मुझे कहा है. "

अब आह्ला और भी चक्कर में पड़ी. उसे और इस्टेट के प्लांटर जिसे हजारों डालर महीने में मिलते हों—चाहे, असंभव है. क्या यह सत्य है ? या केवल भ्रम. अथवा नाथन ही गड़बड़ करना चाहता है. उसने अपने आपको काबू में करते हुए कहा:—

" नाथन ! मेरा कम क्यों थका रहे हो ? "

" नहीं. " नाथन ने यह कहकर आह्ला के हाथ में दस डालर का एक नोट थमा दिया.

अब आह्ला को मानना ही पड़ा कि कुछ सच्चाई तो है. दस डालर के लाल नोट की गर्मी उसके शरीर में बिजली सी दौड़ी. प्लांटर वाकई उसे चाहता है. उसके मानस-तल में एक विचित्र स्फूर्णा उठी. वह खुश थी. बोली:—

" अब क्या करूं मैं ? "

" आज शाम को उनके बंगले पर चली जाना. " यह कहकर नाथन चला गया.

आह्ला अनाहूत सुख की कल्पना करके विभोर हो उठी. उसकी आँखों में प्लांटर के ठाठबाट घूम गये, उसकी वह जीप भी दौड़ गई, जिसमें अब वह स्वयं बैठेगी.

. ...

सिन-ही बड़ी फूर्ती से रबर का दूध लिए चला आरहा था. जब वह प्लांटर के बंगले के सामने से गुजरने लगा तो उसे आह्ला नजर आई. आह्ला और इस बंगले पर ! उसे विश्वास न हुआ.

पर साथ ही उसकी चाल मंद पड़ने लगी. उसके कंधे ढीले होगए. वह दूध की बाल्टियां कंधई समेत एक ओर रखकर वहीं बैठ गया.

सिन-ही, जोकि आह्ला समेत प्यार के आकाश में परिंदा बनकर उड़रहा था. नीचे आ गिरा. वह धरती पर अपने प्यार के फूल की कलियाँ बिखरी हुई निहार रहा था.

कुछ ही दूरी पर बंगले में स्थित आह्ला सिन-ही को देख चुकी थी. उसने उसका फूर्ति से चलते हुए ढीला पड़कर बैठने तक सभी कुछ देखा. वह समझी, पर बात करने आगे न बढ़ी. बढती क्यों ? उसे अब एक गरीब से बात करने की आवश्यता ही नहीं थी. वह खड़ी रही.

सिन-ही उसके पास आया. उसने आह्ला को एक भयंकर दृष्टि से देखा. उसकी आँखों में प्रलयंकारी तूफान था. हिम्मत थी. जोश था. वेस्टवाटर वाली कामुक नमी नहीं.

आह्ला मुस्करायी भर. मानो ऐसा करके उसने बड़ी कृपा की हो.

" यह क्या आह्ला ? " सिन-ही का प्रश्न था.

" देख रहे हो. " आह्ला नीरस स्वर में बोली.

" देखता तो तुमसे क्यों पूछता ? क्यों ठहरता ? सीधा न चला जाता. "

" नहीं देख रहे हो. मुझे यही राह पसंद आई. तुम्हारे साथ तकलीफें मेरे सुखों के उठते हुए सिर को कुचल डालतीं. प्रेम पैसों की कमी नहीं पूर सकता. अभावों से लबालब जीवन कोमल भावनाओं से सुखी नहीं हो सकता. अभाव की पूर्ति के लिए डालर चाहिए. वह मुझे मिल गया. मैं सुखी हूं. "

" आह्ला, तुम यह सब कह सकती हो. तुम्हें अधिकार है. मेरे साथ बंधी नहीं. मुझे अधिकार नहीं कि मैं तुम्हें जबरन या किसी भी

तरह कष्टों के कँटीलेपन पर घसीटूं. यदि तुम डालर को ही जीवन समझती हो, जीवन का सुख समझती हो. तब डालरों की दुनियाँ में जरूर प्रसन्न हो. एक बात है. आह्ला, सच बताना कि स्वान वेस्टवाटर ने तुम्हें बुलाया ?"

"हां"

"क्यों न हो ? तुम सुन्दर. सुन्दर वस्तु को हरेक अपने उपयोग में लाना चाहता है. डालर ही हरेक सुन्दरता और मोहकता को खरीदने की शक्ति रखता है. मैं एक कुली ! मेरे पास डालर कहां ? आह्ला, तुमने मुझे धोखा दिया है, इसका न्याय, प्रेम का देवता ही करेगा." यह कहते हुए सिन-ही अपने रास्ते पर हो लिया.

आह्ला सिन-ही को हल्की नजर से देखती हुई घूम पड़ी. वैभव के कचरे की कई परतें उसकी आत्मा पर चढ चुकी थीं.

सिन-ही का अंतरतम जल उठा. ज्यादा काम नहीं कर सका. रह-रह कर आह्ला की आकर्षक आकृति उसके सामने आजाती. इस आघात को सह न पाया. प्रयत्न किया कि वह सब कुछ भूल जाय. ज्यों ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता ही गया. बीयर के नशे में धुत होकर समय से पूर्व ही वह घर लौट आया.

... ...

सिन-ही-फट अपने लक्ष्य पर आकर रुक गया. उसने मच्छर-दानी उठाकर आह्ला को जी भर देखा. उसका मन प्रतिशोध की ऐंठन से ऐंठकर दुहरा होगया. जब वेस्टवाटर ने नींद में ही आह्ला को अपनी मांसल बाहों में बांधा.

क्षण भर बाद सिन के हाथों में छुरा चमका. आह्ला की पीठ को चूमता हुआ कलेजे के पार होगया. वह चीखी. खून का पनाला बह चला. खत्म होगई.

नशे में गर्क वेस्टवाटर को पता भी न चला कि कौन आया और

गया. क्षणिक हलचल से उसकी नींद उड़ी. डिम लाईट में उसने आह्वा की दर्दनाक हालत देखी. खून से लथपथ बिस्तर पर से उठकर अलग जा खड़ा हुआ.

नशे के काफूर होते न होते उसे कर्त्तव्य का ध्यान आया. फोन का रिसीवर उठा लिया.

दूसरी ओर से प्रश्न किया गयाः—

" क्या हुआ...? "

" कम्यूनिस्ट...अभी ..अभी . खून......" वेस्टवाटर ने उत्तर दिया.

" घबराओ नहीं " दूसरी ओर से आवाज आई.

मिलट्री की एक टुकड़ी सन्नाटे भरी रात में चारों तरफ फैल गई, पर कम्यूनिस्ट का पता न चला.

... ...

दूसरे दिन मि० वेस्टवाटर ने एक भेंट में प्रेस रिपोर्टरों के सामने कहाः—

"वह कम्यूनिस्ट था"

... ...

जिंजांग नोर्थ (केपोंग)
मलाया

२४ मार्च, १९५४

मीयेवाह

"आखिर हमारा अंत क्या होगा ? कुछ समझ में नहीं आता. अकेले ही अकेले हैं. भयावना दिशाहीन लक्ष्य लेकर हम कब तक जीयेंगे ? " शमवा ने मीयेवाह से अपनी गन साफ करते हुए कहा.

"मैं इतना सोचना नहीं जनती. जैसे और चले वैसे हम चले जायेंगे. लक्ष्य का अंत न जाने कौन देखेगा ? या कोई न भी देखे. " मीयेवाह बोली.

" शायद कोई न देखे. "

" फिर हम विरोध क्यों कर रहे हैं ? क्यों रातों जागकर जंगलों में भटकते हैं ? क्यों चोरों की तरह लोगों के घरों में घुसकर उन्हें त्रास देते हैं कि वे हमारे लिए सहानुभूति पैदा करें. हमें रोटी दें ताकि हम लड़सकें. यह सब किस लिए ? "

" बड़ी व्यग्र हो." शमवा की आवाज में मिठास था.

" व्यग्र कैसी ? मन में कहीं कुछ फांस जैसा रड़क रहा है. सह नहीं पाती "

" बहको नहीं. जो तुम चाहती हो, वह भी होगा. "

" होगा ! यह मैं भी जानती हूं. पर कब ? यह नहीं. शायद तुम भी .. "

" मैं भी नहीं."

"तुम भी नहीं ! मैं पागल थी जो सब सुखों के साथ ही अपनी पढ़ाई को भी ठोकर मार कर, तुम्हारे पीछे आई. यदि न आती तो आज कहीं किसी अच्छी सर्विस पर होती. तुम्हारे ये फटे कपड़े, गोलियों के गहरे घाव, कुछ भी तो ठीक न करना पड़ता. जहां रातदिन कानों में ठाँय ठाँय की ध्वनी घुलती चली जाती है, वहां मीठे मीठे गीत होते. सब कुछ मात्र था, पर अब हर कदम पर ठोकर, दर्द, भूख, डर, और लड़ाई यही सब है. अभी यहाँ बैठे हैं. पता नहीं दूसरे क्षण कहाँ हों ?"

शमवा ने गन पेड़ के सहारे रख कर मीयेवाह को स्निग्धता से कहा—

"पगली, तूने क्या कुछ किया ? मैं जनता नहीं, जो तूं कह रही है. अंधेरे के बाद रोशनी हा तो आती है. और हलाहल के बाद अमृत..."

मीयेवाह ने शमवा की ओर सरककर, उसके कंधे पर अपना सिर टिकाते हुए कहा:—

"तुम जापानी पतन के बाद से ही लक्ष्य के लिए जूझ रहे हो. तुम्हारा क्या हाल हे ? क्या मैं सोचा करती थी ? कालेज में हमदोनों की कितनी मधुर कल्पनाएं थी ? पर आज क्या हो रहा है...?"

"वह सब भूली नहीं तुम. बीते दिन लौट नहीं सकते. उनका याद करना भी व्यर्थ है. जीवन में मनुष्य अपनी मंजिल के लिए लड़ता हुआ मर जाये, इसी में सार्थकता है. बढ़कर पीछे कदम हटाना, घृणित मौत से भी बुरा है." शमवा ने मीयेवाह की पीठ स्नेह से थपथपाकर कहा.

"इसीलिए तुम्हारे साथ हूं. कितने दिनों के बाद इतनी समीपता से मिल सकी हूं. काश . ! हमेशा यों ही रहती."

मीयेवाह की प्रणय भावना उभर आई. लेकिन भावना की मृदुलता दूर से आती हुई धांय धांय की गूंज सह न सकी.

शमवा ने उछलकर अपनी गन उठाली. मीयेवाह जो निढ़ाल हो रही थी, फूर्ति की सजीव प्रतिमा बनकर साथी के साथ अपनी निर्देशित दिशा में लीन होगयी.

वह वन प्रांतर सेना की एक छोटी सी टुकड़ी से भर गया. पर वहाँ कुछ न था.

... ...

" सुन रहे हो... तुम्हें उसके सामने से हटना होगा. " पार्टी के चीफ सक्रेटरी योंगपेंग ने शमवा से अंधेरे में संकड़ी सी राह पर कदम बढ़ाते हुए कहा.

" पर उस वक्त जबकि काम में कोई बाधा आये. " शमवा ने मंद पर दृढ़ स्वर में साथी का अनुसरण करते हुए कहा.

" बाधा...? वह जरूर आयेगी. मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता. एक स्त्री पार्टी के अंग को काटकर ले जाये, वह भी देखते हुए; मैं नहीं सह सकता. " योंगपेंग ने अधिकार पूर्ण स्वर में कहा.

" मेरा लक्ष्य, मैं जानता हूं योंगपेंग. याद है तुम्हारे साथ ही मैंने यह कठोर जीवन आरम्भ किया और आखिरी वेला में भी यही रहेगा. इतने लम्बे अर्से के कारण अब इस जीवन से ममता होगई है. मैं इसे त्याग नहीं सकता. मुझ पर विश्वास नहीं हो रहा !"

" है...पर होते हुए भी धोखा हो जाता है. तुम भावना में बह रहे हो. कहीं ऐसा न हो कि उसका प्रवाह तीव्र हो जाये और तुम बचने का प्रयत्न करके भी बह जाओ. "

" ओह...! मैं बहने से पहले मौत को चूम लूंगा."

उत्तर में अविश्वास भरी चुप्पी थी.

" बोले नहीं . "

" क्या...? "

" मैं जो कह रहा हूं."

" तुम जो कह रहे हो . हाँ, तुम कह रहे हो."

" तुम्हें हो क्या रहा है ?"

" कुछ नहीं कुछ नहीं वा ! देखो, मैं गिरूंगा. बेहोशी..." योंगपेंग आगे कुछ कहे, इससे पूर्व ही वह उस पतली सी पगडंडी पर गिर पड़ा.

शमवा ने कामरेड योंगपेंग को अविलम्ब अपने कंधे पर उठाया और तमिस्रा की काली चादर में छिपकर आगे चल पड़ा.

... ...

सीयेवाह ने योंगपेंग के चेहरे को मोमबत्ती के मंद प्रकाश में देखा. शांत. नींद में लीन. उसने संतोष की सांस ली कि आज कई दिनों के बाद विश्राम तो मिला. बेचारा कितना झगड़ रहा है, पर सफलता है कि दूर ही है. शरीर को भूख-प्यास ने कितना सुखा दिया है. मनुष्य मंजिल के लिए अपने आपको पंजर भी बना डालता है. यह अनुभव कर उसका अंतःस्थल करूणोद्वेग से भर उठा.

सीयेवाह धरती से काफी ऊपर उठाकर बनाये हुए लकड़ी के मकान के दरवाजे पर आकर बैठ गई. निशा की भयावनी भाव-भंगिमा उसे न भायी. रात दिन बरसने वाले मेघों के स्थान पर टिमटिमाते तारे नजर आये. पर मृदुल भावना उनमें न थी. मातीकायू के विशालकाय पेड़ों का धुंधला स्वरूप भी वह अंधेरे में देख रही थी. उनकी सघनता में परिन्दों के बजाय रात समाकर और काली हो रही थी. थोड़ी दूरी पर आदिवासी " शाकाइयों " के लम्बे घर भी अपनी काली छाया लिए खड़े थे. यह सब देखकर भी वह अनदेखा कर रही थी. उसकी भावनाएं सूनी प्रकृति की विस्मयजनक कृतियों में न उलझकर, अपने वर्तमान और भविष्य के चारों ओर चक्कर काट रही थीं. जिसमें हर

तरफ केवल संघर्ष का कटु स्वर ही था. यदि कुछ और था तो मुक्ति का स्वप्न. खाली स्वप्न वह ध्रुवता से कह और विचार नहीं सकती कि वह कब साकार होगा ? हालांकि वे उसकी साकारता के लिए विस्फोट बनकर नष्ट हो रहे हैं. जिससे विदेशी सरकार की नाक में दम जरूर है, बिगड़ कुछ भी नहीं रहा. केवल मातृभूमि की शक्ति क्षीण हो रही है. अब आस्ट्रेलिया से भी एक शक्तिशाली रेजीमेंट और आस्ट्रेलियन एअर फोर्स इस छोटी सी धरती पर आरही है, जोकि हमें मिट्टी में मिलायेंगे..क्या यह मुक्त होने का सही तरीका है ? भारत के नये इतिहास में भी उसने पढ़ा था कि वहां के पहले स्वाधीनता संग्राम का कुछ ऐसा ही स्वरूप था. उसके बाद भी इससे मिलते जुलते संग्राम वहां छिड़े. सबसे शक्तिशाली आंदोलन गांधी का रहा. सारे देश के प्रयत्न से अंगरेजों को विशालभारत छोड़ना ही पड़ा. हम भी वह "एक दिन" देखेंगे जबकि गुलामी की पहाड़ियां हमारे भूकंप से फट जायेंगी. संसार मलाया को गणतंत्री देशों में शुमार करके मान्यता प्रदान करेगा. उस स्वर्णिमकाल के आने तक उनके जीवन का क्या होगा ? शमवा . और वह."

"मीयेवाह.. !" योंगपेंग ने पुकारा.

मीयेवाह चौंककर उठी. उसे यह पुकार अच्छी न लगी. विचारों की मधुरता भी वह प्राप्त नहीं कर सकती.. ! असंतोष से उठकर योंगपेंग के पास गई, बोलीः—

"नींद खुल गई ?"

"वहाँ क्यों बैठी थी ?"

"क्योंकि तुम सो चुके थे."

"पर तुम्हारे लिए मूक रात्रि का यह समय अच्छा नहीं. पार्टी..."

"अजीब आदमी हो. हरवक्त पार्टी की धुन लगी रहती है. इसके अलावा कुछ और है ही नहीं ? किसी और को नहीं तो कम से कम इन पेड़ पौधों को ही याद कर लिया करो, जिनकी छांह में जीवन रक्षा करते हो." बीच में ही मीयेवाह ने आवेश में आकर कहा.

"जीवन में कुछ और है भी तो नहीं, उसके सारे तत्व निचुड़ कर पार्टी में ही समा गये हैं. पार्टी ही जीवन हो रही है." योंगपेंग ने यह कहते हुए मोमबत्ती को बुझते देखा तो आगे कहा:—

"वह बुझ रही है."

"वह बुझेगी ही."

"मेरा मतलब..."

"अंधेरे में ही तुम सो सकोगे."

"और नहीं ?"

"ज्यादा बोलो मत. पहले आराम से सो जाओ. ठीक होने पर जी भर कर काम करना. मैं नहीं रोकूंगी."

"यह लो अब अंधेरा ही अंधेरा." योंगपेंग ने मोमबत्ती बुझ जाने पर करवट लेकर कहा.

"तुम्हारे लिए यही अच्छा है. सो जाओ."

फिर कोई न बोला.

कर्मठ योंगपेंग को नींद न आई. उसका जी मीयेवाह की समीपता से भर आया कि यह कोमलांगी कितनी तकलीफें सह रही है ? अमीर की बेटी होकर भी ठोकरों का दर्द हँसकर झेल रही है. पार्टी के हरेक सदस्य के लिए इसके हृदय में कितनी ममता है ? कैसी निष्कपट...और ..सरल...? कोई थाह नहीं. कई साथियों की गुल हो जानेवाली जिंदगी इसीके अमृतमय हाथों से बची. यह हमारे लिए संजीवनी है. उसने मीयेवाह का हाथ टटोलकर, अपने हाथ में लेते हुए कहा:—

" वाह.... "

" सो नहीं रहे. "

" हम तुम्हें कितने कष्ट दे रहे है ? यह सोचने के लिए तुम्हें अवसर ही नहीं मिल पाता. सचमुच, तुम पूजा के योग्य हो. तुम्हारा यह यौवन कभी न थके, ताकि हम लोग बार बार मरणासन्न होकर फिर जी उठें. तुम्हारे हाथों का यह यशस्वी जोड़ा बना रहे. "

मीयेवाह के भावनाशील नारीत्व से उस योंगपेंग की भावुकता- जिसकी भृकुटियां सदैव ही कर्त्तव्य भार से चढी रहती हैं- छिपी न रह सकी . उसने उसके सिर पर हाथ फेरकर ममत्व से कहाः—

"मैं कहती हूं सो जाओ ..हाँ ..सो जाओ ..बड़े अच्छे हो .. ."

योंगपेंग एक भार से दब सा गया. वाणी मूक हो गई. उसका मस्तिष्क नारी की मृदुलता पाकर स्फूरणा से भर उठा. वह नारी के इस नैसर्गिक रूप पर मोह गया. मीयेवाह के कोमल हाथों को अपने हाथ में लिए ही सो गया.

... ...

" उठोगे नहीं . " योंगपेंग ने नींद में लीन शमवा को जगाने के लिए कहा.

नींद थकान की थी, न टूटी.

" उठो भाई. " योंगपेंग ने शमवा को हिलाकर फिर कहा.

" कौन ? वाह. बड़ा थका हूं. मीठी नींद है. यह पाप न करो. " शमवा नींद ही में कह गया.

" पर मुझे पता है कि तुम काफी सो चुके हो. अब तुम्हें उठ जाना चाहिए. "

इस बार भी शमवा की नींद पूरी न खुली. उसने निद्रिल स्वर में पीठ फेरे हुए ही कहा.—

"थोड़ा और सो लूं, ताकि जोहोर जा सकूं."

"शमवा... !!" योंगपेंग ने तीव्र स्वर में पुकारा.

शमवा चौंक कर उठ बैठा. बोलाः—

"कौन ? तुम योंगपेंग ! मैं तो..."

"हाँ. तुम स्वप्न में थे. तुम्हें सीयेवाह चाहिए. तुम्हें हो क्या रहा है ? कई बार कह चुका हूं कि उसे भूल जाने में ही भला है. उसके साथ तुम काम नहीं कर सकते."

"लेकिन मैं अपना काम करके लौटा हूं."

"क्या यह आखिरी काम है ? कामरेड... तुम...

"क्या मैं... कहो न."

"कुछ नहीं. आज शाम होने के पहले ही तुम क्वांटान चले जाओ. वहीं विश्राम करो. उचित समय पर तुम्हें मेरा निर्देश मिल जायेगा." यह कहकर योंगपेंग चला गया.

शमवा योंगपेंग का अभिप्राय समझा. कुछ न कहा. अनुशासनमय जीवन है. अपने लीडर का आदेश है. मानना ही पड़ेगा. अन्दर ही अन्दर कमजोरी उकसी, पर तुरन्त ही उसकी जगह कर्मण्यता ने लेली. वह अंगड़ाई तोड़ते हुए उठा और चल दिया.

... ...

जब सीयेवाह को पता चला कि शमवा आया और बिना मिले ही चला भी गया तो उसके मन पर गहरी ठेस लगी. वह उन्मन हो उठी. उसका अनमनापन योंगपेंग से छिपा न रह सका. वह मानवीयता का शत्रु नहीं, जो मानसिक द्वन्द्व इन दोनों में चल रहा है उसकी अनुभूति उसे भी होती है. कभी कदास उसके दिल की किसी गहराई में भी कुछ होने लगता है, पर प्राधान्य के लिए सब हेय है. यही विचार उसे बाध्य करता है कि वह नेता होकर कठोर रहे. सुदृढ़ कदम रखे. जरा भी चूका कि अभीतक किए कराए

पर पानी फिर जायेगा. दुनियाँ उसके पतन को विस्मृत कर देगी, लेकिन उसकी अन्तरात्मा उसे वेधती रहेगी.

मिलने पर योंगपेंग ने मीयेवाह से कहाः—

"खोई खोई सी रहती हो."

"पहचानते हो." उत्तर में मीयेवाह ने सूखी हँसी के साथ कहा.

"हाँ, पर कुछ कर नहीं सकता." यह कहते हुए योंगपेंग गंभीर हो उठा.

"कुछ तो कर ही रहे हो.',

"लाचार हूं."

"अंत कभी सोचा?"

"लाभ ही क्या?"

"यदि कभी मंजिल के दर्शन हो जायें तो सोचना."

"वाह! स्यात् तुम सोचती हो, कि यदि पार्टी के साधारण सदस्य अपनी स्त्रियों के साथ रह सकते हैं. जवान सदस्य लड़कियों से मिलजुल कर शादी कर सकते हैं. फिर क्यों नहीं वह सब तुम्हें भी करने देता? जानती हो हमारे दल की शक्ति कौन है? ये साधारण सदस्य यदि इन्हें अनुशासन के भयंकर शिकंजे में कसा जाये तो संभव है वे पार्टी से अलग हो जायें. हरेक कार्य समय की वक्र गति को परख कर करने में ही लाभ है. हम दल के मुखिया हैं. मुखिया को हमेशा ही महान त्याग करने पड़ते हैं. त्याग के फलस्वरूप लोग वशीभूत होते हैं. इतनी बड़ी देशव्यापी पार्टी का यह सुसंगठन हमारे त्याग की शक्ति पर ही हो रहा है. त्याग, तपस्या और संयम से न डरो. अन्यथा हमारी पार्टी मिट जायेगी. हम मिट जायेंगे. सोचो समझो कि ये जवान हमारे पीछे हैं. हमारे संकेतों पर खून

बहाते हैं. मरते मारते हैं. उन्हें हम पर विश्वास के साथ ही श्रद्धा भी है. हम विलासिता की छुरी से उनकी श्रद्धा का खून नहीं कर सकते. यदि हम ही बहक कर भटक जायेंगे तो हमारे उन विश्वासों का क्या होगा ? जो हमें जन्म से ही इन्सानियत ने विरासत में दिए हैं. हमारा इन्सानी फर्ज अधूरा ही रह जायेगा. हम इन्सान हैं, केवल खा पीकर ही नहीं मरेंगे. कुछ ऐसा अपने पीछे छोड़ जायेंगे, जिसे पाकर हमारी आनेवाली पीढी मनुष्यता का पाठ सीखेगी. और आदमी को आदमी ही मानेगी. "

" यह सब क्यों कह रहे हो ? मैंने तो... "

" तुमने कुछ नहीं कहा. ठीक है. पर मैं अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए कह रहा हूं. मैं तुमसे कुछ पूछना भी चाहता हूं. "

" क्या ? "

" तुम और शमत्रा... "

" योगरेग, प्रश्न अधूरा ही अच्छा है. क्योंकि यह कभी भी पूरा न होगा. पर इसमें भी पूर्ण सचाई है जो मेरे मन की चीज है. "

" उस सचाई का सुख तुम अन्य दिशा में नहीं मोड़ सकती ? "

" काश ! मैं यह कर सकती ! "

" कोशिश करो न. शमत्रा पर मैं बड़ी आशाएं रखता हूं मैं उसके प्रति जितना कठोर हूं उतना ही मृदुल भी. उसके लिए मेरे मानस में स्नेह का अथाह सागर लहरा रहा है. मैं उसे प्रकट नहीं कर सकता. जिस रूप में मैं अब हूं, वही पहाड़ की चोटी तक पहुँचने में सहयोग देगा. "

" इतना ही स्नेह था तो उस दिन शमत्रा को मुझसे मिलने क्यों नहीं दिया ? "

"तुम्हें पाकर वह अपने आपको भूल जाता है. उसकी कर्मण्य शक्तियाँ सो जाती हैं. मैं नहीं चाहता कि उसका जीवन तुम्हारे तक ही सीमित रहकर कीचड़ की तरह जम जाये. उसे मुक्त करदो कि वह जन-मानस की नदी में संतरण कर विजयश्री पाये."

"तो तुम दूसरे के सुख से जलते हो."

"नहीं. कर्त्तव्य को पीठ दिखाना अपने सिद्धान्तों के प्रतिकूल है."

"जीकर नहीं तो मरकर ही सही. मैं प्रयत्न करूंगी कि मेरी चाह को मुक्त कर सकूं. वह फले-फूले." स्वर में पत्थर की सी अचलता थी.

"योंगपेंग कुछ और न कहकर चला गया, चूंकि उसे विश्वास था कि पार्टी के सदस्य जो कहते हैं वही करते भी हैं.

मीयेवाह अतृप्ती, असंतोष और असह्य वेदना की आग में जलती हुई वहीं खड़ी रही. वह मानसिक हलचल को सह न सकी. एक सीमा में रहकर ही सहा जा सकता है. पर यहाँ उसे कोई सीमा दृष्टिगोचर न हुई. अनंत के सहारे देहधारी मानव कब तक जी सका है ?

... ...

रात बढ़ती चली गई पर संतप्त मीयेवाह की आंखों में नींद न आई. मन की भभकती आग में उसकी सुकुमार अभिलाषाएं और कल्पनाएं शनैः शनैः राख होती रहीं. भयंकर घुटन में वह लेटी न रह सकी. उठ कर घूमने लगी. मोमबत्ती का धुंधला प्रकाश उसकी आंखों में भी धुंधलापन भरने लगा. मन की सभी शक्तियाँ कुंठित होकर बेहाल थीं. उसे लग रहा था– उसका सब कुछ लुट रहा है, जल रहा है और वह विवश है, कर कुछ नहीं सकती. कभी न सोचा था ऐसा

भी होगा. उसने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया. अब वह शमवा के सामने नहीं आयेगी. पर चलती हुई ये श्वांसे, कभी न कभी उससे जा टकरायेंगी. करे क्या ? प्राण कांपे. न चाहकर भी हगकोणों में नमी छा गई.

ऊहापोह केवल ऊहापोह. दो पहलू. किसे अपनाए ?

निदान बात समाप्त करने के लिए सीयेवाह ने पिस्तौल की नली छाती से लगाली. कर्त्तव्यपूर्ण होकर बुलंद आवाज में गरजा. समीप ही दूसरे भाग में सोये योंगपेंग की नींद टूटी. उठकर भागा. देखा- दल की संजीवनी खून से सनी तड़फ रही है. उसे सम्भाला पर वह तो अदृश्य राह पर पैर रख चुकी थी.

वाह का सिर योंगपेंग की गोद में था. मृत्योन्मुखी वाह को अब भी होश था. उसे क्षीण अनुभूति हुई कि कोई उसका स्पर्श कर रहा है. उसने अंतिम वार आंखें खोली. देखा परिचित चेहरा है. बैठती आवाज उसके मुंह से निकली:—

"खुश हो !"

"मैं यह नहीं चाहता था." योंगपेंग ने आर्द्रकंठ से कहा.

उस दिवानी ने शक्तिहीन हाथ की अंगुलियाँ योंगपेंग के होठों पर रखदी. और कहा:—

"उससे कुछ न कहना. पूछे तो इतना ही कि मैं शत्रु की गोली से मरी." .. और उसकी आत्मा का पंखेरू पंख पसार कर उड़ चला.

... ...

जिंजांग नोर्थ
केपोंग (मलाया)

२२ मई, १९५९

संघर्ष के बाद

याम ने सामने दूर तक देखा. नजर में ताजगी और आलस दोनों ही थे. डूबते सूरज की किरणों से घाटी की हरियाली में सुनहरा-पन छलक रहा था.

पर याम को यह न भाया. उसे प्रकृति अपने सौंदर्य से विभोर नहीं कर पाई. मन और आँखों का विकर्षण यह कब होने देता? कच्ची सड़क जैसा ऊबड़-खाबड़ और अन्धड़ जीवन, कर भी क्या सकता है? रंगीन दुनियाँ तो दूर, यहाँ उसके सपने भी नहीं आते.

याम ने अपने साथी को देखा, जो चट्टान पर बैठा ऊंघ रहा था. उसकी इच्छा हुई चुप्पी को तोड़े. पर बात ओंठों पर से लौट गई. साथी की ऊंघ को तोड़ न सका. मन में दर्द हुआ. सबेरे से अभी तक काम किया. अब अवकाश मिला है. सोये तो अच्छा है. पर यहाँ बाहर नहीं, अन्दर. पहाड़ो के पास वाली खोह के घर में.

"चिम, अन्दर चलो." यह कह कर याम ने साथी को हिलाया.

"सोने भी दो थोड़ी देर. कोई आर्डर-आया और काम ही काम." चिम ने उनींदे भाव से कहा.

"ठीक है, पर अन्दर."

"नहीं. गर्मी बहुत है."

"पर यहाँ सो कैसे सकोगे? कहीं से भी गोली आ सकती है."

"गोली .. ! वह नहीं आयेगी. आये भी तो क्या है ? नई बात नहीं. बस सोने दो." यह कह कर चिम चट्टान के नीचे पैर लटका कर सो रहा.

याम ने विरोध न किया. वह सजग था.

"याम !" आवाज आई.

याम ने आवाज को लक्ष्य कर उसी दिशा में देखा और कहा—"हाँ, आजाओ."

फटे हाल में एक युवक ने प्रवेश किया.

"कहो! " याम कह गया.

"सावधानी से रहो. चीफ कामरेड का संदेश है. ये निर्देश-पत्र आज रात को ही पूर्व निश्चित संख्या में छप कर कल प्रातः मिलने चाहिएं, ताकि कल शाम तक देश के पार्टी के मुख्य केन्द्रों में प्रसारित किये जा सकें." आगन्तुक ने कुछ हस्तलिखित कागज देते हुए कहा. उसकी नजर चिम पर गई.

"अच्छा, यह सब होगा. हाँ, चिम थक गया था सो सोगया. थोड़ा चाय का पानी पीलो. शरीर में स्फूर्ति आ जाये."

"नहीं, राह बीहड़ है. दूर जाना है. अंधेरा सिर पर है." और आगन्तुक युवक आतुर भाव से जिस राह से आया था उसी से चला गया.

रातको—

लालटेन के मन्द प्रकाश में लीथो की मशीन ठीक करते हुए चिम ने कहा—

"याम, प्रेस कापी बना चुके. मुझे दो. घंटे भर में सब निकाले देता हूं. तुम लेटो. लिखते-लिखते थक चुके हो. मैं शाम को सो लिया था. पर तुम अभी न सो जाना. क्या मालूम मशीन ही बिगड़ जाये.

लालटेन ही भभक उठे. और नहीं तो बादल का कोई टुकड़ा अंदर घुस आये. ऊँची-ऊँची पहाड़ियों में हमारा घर जो है." आखिर तक चिम के ओठों पर कठोर मुस्कराहट थी.

"अच्छा, तुम काम करो. कल शाम तक कामरेड का यह संदेश सभी जगह पहुंचना है. सवेरे छः पर आदमी आयेगा. तुम्हें लेकर जाना होगा." याम ने कहा.

"ठीक है." कह कर चिम ने काम शुरू कर दिया.

याम ने केटली में से एक कप उबले चाय के पानी को खुद पीकर दूसरा चिम की ओर बढ़ाते हुए कहा:--

"पहले ही पीलो, ताकि जल्दी थकान न आये. अभी बारह हुए होंगे. दो तक काम पूरा हो जाना चाहिए. जिससे आंखों की नींद पूरी हो जाये."

"सोच मैं भी यही रहा हूं." चिम ने चाय का पानी पीकर कहा.

"चिम, बड़ी लम्बी रात है. और इसका दामन भी कितना भयावना है? न मालूम सूरज की पहली किरण कब फूटेगी?"

"याम. वह कोरिया से इंडोचाइना पर चमकी और अब जरा दूर फारमोसा पर है." चिम ने प्रेस करते हुए कहा.

"बड़ी दूर."

"दूरी भी कभी समाप्त होगी ही."

"कभी, पर अभी नहीं. कामरेड इस कभी की समाप्ति से पहले ही हम सो जायेंगे."

"तो इससे क्या? आजादी की लहर और साथी पैदा कर लेगी. एक दिन मलाया हमारा होगा. इसके जर्रे-जर्रे में हम होंगे. हमारी बुलन्द आवाज उन्मुक्त आकाश में गूंजेगी."

"हमारा, पर चिम और याम का नहीं." याम ने लकड़ियों के

लम्बे पट्टे पर लेटते हुए निश्वास छोड़ कर कहा.

"हम अलग नहीं."

"आदमी भी क्या धुन पकड़ता है ? हम इन दुखती चोटों में ही प्रसन्न हैं. और नहीं तो मौत की तिलमिलाहट में हँसना ही पसंद करते हैं."

"चूंकि वह बुद्धि रखता है. विवश होकर भी वह गुलामी की मीठी बहारों में जीना पसंद नहीं करता. स्वतंत्र आकाश और धरा के बीच वह जहर पीकर भी अपनी प्यास मिटाने का इरादा कर सकता है."

"तुम भी दूर जाने लगे. और तभी हम, देखो न... इस वक्त जबकि मानवीय हलचल मूक होकर विश्राम कर रही है. क्यों ?"

"याम .." चिम ने काम में लगे ही तेज आवाज में कहा:— "भूल रहे हो. बहको मत. आराम जैसी मीठी मौत में जी कैसे सकोगे ? यह तुम्हें और तुम्हारे मानस को चिथड़ों की भांति टुकड़ों में बदल देगी. इन्सान से हैवान बन जाओगे."

इसी समय याम बाहरी आवाज से चौंक कर उठ बैठा. बोला:—

"चिम, शायद शिकार आ रही है. चलो कल की फिक्र मिटी."

"गोली से काम न लेना. पिस्सो ⊛ लेकर चट्टान की ओट में खड़े रहो. मैं यहाँ अपने मूड में बैठा काम में लगा रहता हूं. वह सीधा झपट कर मुझ पर ही आयेगा. तुम बीच ही में... ." चिम ने कहा.

याम पिस्सो लेकर चट्टान की आड़ में छिप गया. क्षण भर में भयंकर पशु की आंखें चमकी. चिम को सामने पाकर लपका कि, बीच ही में तीखी नोक ने पेट में घुस कर उसे रोका. गिरते ही चिम ने पिस्सो उसकी गर्दन के नीचे घुसेड़ दी. वह जंगली सूअर था. घायल

⊛ एक प्रकार का लम्बा तेज छुरा.

होकर छटपटाता रहा. कुछ ही देर में चीखता हुआ ठंडा पड़ गया.

हवा के झोंकों और बादलों की गड़गड़ाहट में, इन कर्मण्य साथियों के मन की जोत जलती रही, काम होता रहा.

... ...

ऊषा की लाली के साथ ही बोड्सर प्लेन की कर्णकटु आवाज ने दोनों साथियों की नींद में दखल दी. खोह के छोर पर आकर देखा-प्लेन से संदेश-पत्र गिराये जा रहे हैं.

चिम ने आंखें मलते हुए व्यंग किया:— मलाया का पैसा यों आकाश में उड़ रहा है. सरंडर करो. बस यही सरकार की मांग है. रोज लाखों पोस्टर गिराये जाकर बरबाद किये जाते हैं. पर सच्चा कामरेड न झुकेगा. सचाई यह है कि इन पोस्टरों ने हमारी आंधी से भी ज्यादा शक्ति छीनली है. देख नहीं रहे, आये दिन कामरेड पार्टी को छोड़ कर जा रहे हैं."

याम ने गंभीर आवाज में कहा:—

"आँधी है चिम ! कूड़ा-करकट जा रहा है. कमजोर वृक्ष उखड़ रहे हैं. यह होने दो. अच्छा है. जिसकी जड़ गहरे में है, वह कभी भी न हिल सकेगा."

आत्मविश्वास के साथ चिम ने प्रतिवाद किया :—

"गहरी जड़ वाले भी हिलते देख रहे हो. एक डिस्ट्रिक्ट के चीफ कामरेड ने अपने आपको पुलिस के हवाले कर ही दिया. जिस पर मलाया की आँखें थीं, कि अभी आग है. और एक दूसरे कामरेड ने अपने को इसलिए समर्पित किया. कि उसे ट्रंगानु के जंगलों में रात को शेर ने तंग करना शुरू कर दिया. तीन दिन से वह सो भी न सका. अपनी कमजोरी और झेंप मिटाने के लिए यह बहाना भी खूब ढूंढ़ा. क्यों याम ? हम भी सूअरों के बहाने अपने आपको गुलामी

के नरम पंजे में डाल दें, कि महीने भर से आये दिन जंगली जानवर न आराम से सोने देते हैं और न काम करने देते हैं."

आती हुई खामोशी में दर्द का जमाव एवं उठाव था.

"कायरों की बात ही न करो. हम अपने दल के लिए हैं. बस इतना ही खयाल है. इसके आगे सोचना ही व्यर्थ. यदि कामरेड माओ अपनी मातृभूमि को चांग के फैले हुए खूनी पंजे से निकाल सके तो क्या हम इन मुट्ठीभर विदेशियों को भी यहां से नहीं निकाल सकेंगे? चिम, जरूर एक दिन इनको अपने देश में सिमट कर रहना होगा. केंचुआ जितना बढ़ता है उतना ही सिकुड़ता भी है हमारा यह मलाया एक दिन आजादी के तरानों से अवश्य झूमेगा. यह जरूर होगा चिम, जरूर होगा." याम की आवाज में उल्लास के साथ जोश था.

आगे दोनों अपने-अपने काम में लग गये.

प्लेन पोस्टर फैंकता हुआ घाटी में घूमता रहा.

चिम ने रात को छापे हुए चीनी संदेश-पत्र एक जगह एकत्रित कर रस्सी से बांधे और उन्हें लेकर वह घास में छिपी संकड़ी सी पग-डंडी पर सघन वृक्षावलियों में खो गया.

... ...

याम ने रात को मारे हुए सूअर के माँस की लम्बी लम्बी दो बोटियाँ सवेरे के भोजन के लिए काटी . काफी है, ऐसा खयाल करके बाहर आ खड़ा हुआ.

अब प्लेन जा चुका था. अतः घाटी में पूर्ण रूप से खामोशी थी. याम अपनी दृष्टि तरुमालाओं की घनी हरीतिमा में गड़ाये चारों ओर देख रहा था. उसके मन में संघर्ष था. द्वन्द्व था कि जिन्दगी का बहाव कहां से कहाँ ले आया? उसे याद आई पत्नी. दो साल हो चुके. शायद बच्चा... मानस में ममता ने करवट ली. मोह की करारी चोट

खाकर वह तिलमिलाया। क्या वहशियों का सा जीवन है? पता नहीं कब और कहाँ ये हड्डियां चिटक जायें? आख्याव– पत्नी– का जीना भी बेकार. प्यार का देव ही जानता होगा कि वह कैसे हैं? बच्चा...... !! उसकी आँखों में शैशव का भोला-भाला रूप घूम गया. बाप का कलेजा .. और पहला बच्चा... !

विचारों में मग्न याम पास में घास पर आज ही का गिरा पोस्टर पाकर उत्सुकता से आगे बढ़ा. मन की कमजोरी कदमों में उतर आई. उसने झुककर वह संदेश-पत्र उठा लिया. किसी स्त्री का बच्चे के साथ चित्र. पता नहीं किस अभागी का होगा? उसने अपनी जगह आकर गौर से निरखा और निरखता रहा. होठों ही होठों में फुसफुसाया– "आख्याव .. पढा भी... शून्य भाव से गगन में निहारते हुए बड़बड़ाया–

"जरूर यह तुमसे ज्यादा कीमती और आवश्यक है। तभी तो यह .. फिर जीवन का अंत ममता में ही नहीं. इससे परे भी कुछ है."

याम ने पोस्टर समेट कर जेब में डाल लिया.

अपना काम करके चिम आगया. कहने लगा:-

"सुना, आज तो किसी कामरेड की औरत ने अपने पति को सरंडर (आत्म समर्पण) करने की राय दी है. सवेरे के प्लेन से उसीका मसाला तो बरषा था."

"यह तो होता ही रहता है! आओ कुछ खा पीलें. मैंने सूअर का माँस काटकर रखा है. और कुछ नहीं. माचिस भी नहीं. वह आयेगी कल शाम को. क्या है? कच्चा माँस ही खा लेते हैं." याम अनमनेपन से कह गया.

"हाँ तो, लो खा पीलें. पर मैं कहता हूं कि कामरेड की औरत नेयह कमजोरी क्यों बरती? क्या वह नहीं चाहती कि देश उन्मुक्त

हो. जबकि सारी एशिया स्वतंत्र हो रही है. इस तरह अपने वैयक्तिक आराम के लिए वह एक साथी को छीनकर स्वयं को हेय बना सकेगी ? कितनी हीनता ? क्यों नहीं लोग हमारे पहलू को समझते हैं ? जन-जीवन के प्रति हम आज तक वफादार रहे हैं. हमारी लड़ाई औरांग पुत्ते (अंगरेज) से है. क्यों याम...?"

"तुम्हारा कहना है तो ठीक. लेकिन कोई समझे तो . "

चिम ने लक्ष्य किया कि याम के भीतर कहीं कुछ टूट फूट हो रही है. वह चुप रहा.

हिंसक पशुओं की भांति दोनों ने कच्चे मांस को दांतों से काटर कर खाया. ऊपर से कच्चा पानी पीकर लेट गये.

... ...

याम मन में द्वन्द्व और संघर्ष लिए आगे बढता रहा. भयंकर घुटन अनुभव की, मगर सह गया. घुटन को धुंआ बनाकर उड़ा दिया. कदम पीछे कैसे हटे ? लगता कि सिर फट जायेगा. वह सिर को दोनों हाथों से भींच कर थाम लेता.

गरल की नीलिमा में से उसे नव सृजन और मुक्ति का पाथेय प्राप्त हो रहा था. मरण नहीं.

... ...

एक दिन याम पार्टी का काम करके छिपता छिपता लौट रहा था. बीच में ही मिलट्री की गोलियों से टकरा गया. वृक्षों की हरियाली में ग्रीन ड्रेस पहने छिपकर बैठे शत्रु उसकी तीक्ष्ण नजर से बच न सके. उसने भी मोर्चा लेकर विपत्तियों का सामना किया. संनसनाती गोलियां उसके ऊपर से जा रहीं थी. उसके निशाने अचूक थे. यकायक उसके एक गोली बराबर से आकर जांघ में आ लगी. उसे चिम का ध्यान आया. यहीं रह गया तो वह पकड़ा जावेगा. फायर

बंद कर, मोर्चे से पेट के सहारे ऊँची घास में पीछे की तरफ सरकता हुआ अपनी पगडंडी पर आ लगा. आखिर गिरता पड़ता अपने आवास पर पहुँचा.

चिम ने आगे बढ़कर सहारा दिया.

"दस बारह रहे होंगे. चार पांच को तो ले ही लिया." याम ने चिम के कंधे का सहारा लेकर चलते हुए कहा.

"पर तुम्हारी जांघ तो बेकार होगई." अवसाद से चिम ने कहा.

"तो क्या है ? लिखने से तो नहीं गया."

"अच्छा. तुम लेटो. पट्टी बांध दूं. मांस में गोली बैठी होगी. कैसे मिलेगी ? चाकू से कुरेदकर निकालने में तुम्हे पीड़ा होगी."

"गोली की बात छोड़ो. खाली पट्टी बांध दो. काफी होगा. हाँ, उन जवानों को हमारी जगह का जरूर शक हो चुका है. अच्छा हो कि अब तुम स्थान बदल डालो."

"तुम ..... !"

"यह मुझ पर छोड़ो. एक घायल के लिए पार्टी का आदमी नहीं रुक सकता. तुम जाओ और इसी वक्त. यदि मैं जिन्दा रहा तो कहीं न कहीं टकरा ही जाऊँगा. बड़ा दर्द कर रही है गोली. पैंट खून से लथपथ हो रहा है." याम ने दर्द की लहर में बहते हुए कहा.

चिम ने साथी की पैंट ऊपर करके खून हाथ से पोंछा. घाव पर स्प्रिट डालकर पट्टी बांध दी.

"चिम तुम जाओ ..." याम ने क्षण भर को आँखें बंद करली.

"हाँ, मशीन और ." चिम याम की दर्दनाक दशा देखकर आकुल हो उठा. उसे लगा कि उसकी जबान अंदर की ओर स्वतः खिंच रही है.

"मशीन " याम ने आँखें खोलीं:— "वह यहीं कहीं छिपा दो. फिर ले जाना. यहाँ हमारी कोई भी निशानी शेष न रहे. कागज अपने साथ ले जाओ. सूअर और उसके मांस की बोटियां घाटी में फैंक दो. मेरी गन भी अपने साथ ले जाओ. मैं जाता हूं. परसों यहां दल का एक आदमी आवेगा. उससे तुम्हें यहीं आकर मिलना होगा."

दर्द से पागल याम गिरता पड़ता एक ओर खो गया.

चिम साथी के सब आदेश पूरे कर अनिश्चित दिशा में चल पड़ा.

... ..

याम के बढ़ते हुए कदम डगमगा गए. वह न रुका. शक्तिहीन हो जाने से लड़खड़ाकर गिर पड़ा. लम्बी घास ने उसे अपने सुकोमल अंक में छिपा लिया. होश खोने पूर्व उसने पैंट की जेब में से उस दिनवाला पोस्टर निकाला. उसे प्यार से चूमा और चूमता रहा.

... ...

जिंजांग नोर्थ

केपोंग (मलाया) १३ जनवरी, १९५५

देवता से कहा था

"आज तुमसे साइकिल न चल सकेगी, यूचिन ! मैं तुम्हें घर पहुँचादूं." किम्लान ने लिनच्छोय— (काम करते वक्त हाथों पर पहनने का एक विशेष परिधान) ऊँचा करते हुए कहा.

"नहीं किम्लान, तेनशोव को पता चला तो वह..."

"अभी उसकी बात छोड़ो. तुम्हारे पैर में गहरी चोट आई है. तुम जा भी कैसे सकोगे ?" किम्लान अपनेपन से बोली.

"मैं टैक्सी से चला जाऊंगा. हां, किम्लान यही ठीक रहेगा."

"जिजांग दूर है, टैक्सीवाला तीन डालर लेगा. दिन भर की कमाई घर पहुँचने में लगाकर खाओगे क्या ?"

आखिर यूचिन को किम्लान की बात माननी ही पड़ी.

रबर इस्टेट की सड़क को चीरती हुई साईकिल चल पड़ी.

... ...

"अच्छा किम्लान, अब तुम जाओ. बड़ी देर हो चुकी है तुम्हें." यूचिन ने घर पहुँचकर कहा.

"यूचिन, तुम्हारी बहन घर में नहीं है. शायद वह लौट कर नहीं आई. लाओ मैं ही चूयौ (चोट पर लगाने की एक दवा) गर्म करके लगादूं. क्यों ?" किम्लान ने यूचिन की बात अनसुनी करके कहा.

"नहीं नहीं, अब तुम घर जाओ. मुझे तुमसे कुछ नहीं

करवाना. यही क्या कम है जो तुम मुझे साइकिल पर इतनी दूर ले आई. आकोंग (ईश्वर) तुमसे खुश हो." यूचिन गद्गद् होकर कह गया.

पर किम्लान को जो करना था वही किया. यूचिन उसे रोक नहीं सका.

किम्लान यूचिन के दुखते पैर पर तेल लगा रही थी. और वह आंखें मूंदे लगवा रहा था.

असह दर्द में भी किम्लान के सुकोमल हाथों का स्पर्श ... यूचिन के मानस में सुखानुभूति दे रहा था.

"यह चूयौ, तुम्हारे दर्द को दो तीन दिन में ही ठीक कर देगा. फिर काम पर चल सकोगे. क्यों ?" किम्लान तेल लगा चुकने पर बोली.

और यूचिन आंखें मूंदे मन ही मन कह रहा था-" यह ऐसी क्यों है ? जिस वक्त रबर की डाल टूटकर मेरे पैर पर गिरी, वहां और भी थे ! पर कोई भी मेरे लिए आगे न बढ़ा, यही क्यों आई ?"

"अरे, आंखें मूंदे क्या सोच रहे हो ?" किम्लान ने यूचिन का कंधा हिलाकर कहा.

"कुछ नहीं. हां, तुम्हारी बात ठीक है. जल्दी ही ठीक होकर काम पर चलूंगा. तुम घर जाओ. न जाने तेनशोव क्या क्या सोचता होगा ? देखो ... बादल गरज रहे हैं. भीगती भीगती घर पहुंचोगी. जाओ... जाओ " यूचिन ने कहा.

किम्लान ने चिमनी के मद्धिम प्रकाश में देखा— यूचिन किन्हीं भावनाओं से लड़ रहा है, पर कह नहीं पाता. विलम्ब होते देख इस पहलू को बिना छेड़े ही बोली:-

"अच्छा चलूं ?"

"हाँ, जाओ."

वह दरवाजे से बाहर आकर, साइकिल पर चढी और उमंग से चलदी, गोया उसे अलभ्य मिल गया हो.

यूचिन किस्लान की सुन्दर पीठ का अंधेरे में लुप्त होना देखता रहा. वह लंगड़ाता हुआ अपने गृह-देवता के सामने पहुंचा. घुटनों के बल बैठकर, करबद्ध होते हुए उसने मन ही मन में कुछ कहा . ... न मालूम क्या ...?

. . ..

"खोलो तो, मैं भीग रही हूं..." किस्लान दरवाजा खटखटाती हुई कह रही थी.

पर न दरवाजा ही खुला, और न उत्तर ही आया.

"तेनशोव, सुना नहीं क्या?" किस्लान ने फिर पुकारा.

"सुना है, लेकिन जी चाहता है तुम्हारा मुंह लाल करदूं." अन्दर से उत्तर आया.

किस्लान चुप रही, चूंकि वह अपने पति तेनशोव के गुस्से को अच्छी तरह जानती है. मुंह लाल करना तो दूर, वह हाथ भी नहीं उठा सकता.

हाथ में चिमनी लिए हुए तेनशोव ने दरवाजा खोलकर कहा—"आओ." और अन्दर आने के लिए एक ओर होकर कहता गया—"आज देर क्यों? तुम जानती हो मैं कि बीमार आदमी इतनी रात गये जग कैसे सकता हूं? और न आज चंडू (अफीम) ही आ सकी."

"हो क्या गया? यदि एक दिन जरा देर से आई." कहते हुए किस्लान ने अन्दर प्रवेश किया.

तेनशोव ने पत्नी का अनुकरण करते हुए कई दिनों से अंतस में उमड़ती भावना को व्यक्त किया :—

"तुम बदल रही हो. आज वह नहीं रही जो शादी के दिन थी."

"अच्छा, तुम जाकर लेटो, मैं कपड़े बदल लूं." उपेक्षापूर्ण उत्तर था.

तेनशोव को यह उपेक्षा अखरी, बोला:- "देवता तुम्हें तकलीफ देंगे, क्योंकि तुम मुझे उपेक्षित समझकर दुःख दे रही हो, और न मेरी बात ही सुनती हो"

"सुनी और आज तीन वर्ष से सुनती आ रही हूं." वह कपड़े बदल चुकने पर बोली.

"मैंने तुम्हारे साथ विवाह कष्ट उठाने के लिए नहीं किया" तेनशोव ने बात आगे बढ़ानी चाही.

"यदि कुछ खाना है तो रुको, नहीं जाकर सो रहो." किम्लान ने रुख बदला.

पर तेनशोव न रुका. वह आवेश में आकर सोने के लिए चला गया.

किम्लान घर के देवता के सामने, ध्योव (चन्दन बत्ती) जला कर बैठ गई. उसने करबद्ध होकर आंखें बन्द करली. जब वह उठी तो यूचिन की आकृति उसके सामने घूम रही थी.

... ...

किम्लान रबर का दूध बाल्टी में इकट्ठा करती करती जब थक गई तो थोड़ी देर सुस्ताने के लिए पेड़ की ठंडी छांव में तने का सहारा लेकर बैठ गई. सूरज की भयंकर तपस उसे न भायी. उसके चारों ओर सिवा खामोशी के कुछ न था. हां, कभी कदास रबर के बीज फूटकर अवश्य उसे चौंका देते. ऊपर रबर के सघन वृक्षों की और नीचे घास की हरियाली उस खामोशी को भावनामय किए दे रही थी, जिसे कवि की भावुकता सहज ही में शून्य से मीठे गीत और शिंजनमयी शब्दावलियों में बदल देती है, जिस पर जमाना नाच उठता है.

उसके थके और उदास अंतराल में ऐसे वातावरण ने एक स्फुरणा भरदी. बैठे बैठे उसे अपना ख्याल हो आया. शादी, घर, तेनशोव सभी उसकी आंखों में घूम गये. साथ ही उसी का हम उम्र यूचिन भी. शादी के पहले.... उसे याद आई अपनी अम्माँ, कहते हैं जिसने उसे किसी से कुछ पैसों में खरीदकर अपनी पोषित पुत्री बनाई थी, ताकि बड़ी होकर घर के काम काज में मदद कर सके. पर जब जवान हुई तो अम्मां ने तेनशोव से कुछ डालर लेकर उसका विवाह कर दिया. डालरों में खरीदी गई, डालरों में बेची गई, जैसे वह कोई निर्जीव वस्तु हो, शादी के बाद... तीन वर्ष अपने पदचिन्ह, उसके मानस पर अंकित कर गये. उसके अंकन में क्या क्या है ? क्या संचित है ? यह तो वह स्वयं भी नहीं कह सकती. हां, इतना बता सकती है कि वह सुखी नहीं है. इसलिए नहीं कि उसे तेनशोव को कमाकर खिलाना पड़ता है. वह कमजोर है, सुन्दर नहीं. मेहनत तो उसकी नश नश में व्याप्त है. काम करने से वह नहीं घबराती. आखिर "क्या" पर आकर उसके ओठ मूक हो जाते हैं. उसके मन में कोई हरकत हुई, जिससे उभार युक्त छाती में कंपन की लहर उठी. आंखों की राह वह रक्तिम कपोलों पर बह चली. खामोशी तो खामोश ही रही पर उधर से गुजरता हुआ यूचिन उसे आंखें बंद किए रोते देखकर चुप न रह सका.

"किम्लान !" यूचिन ने पुकारा.

अश्रु पूरित नेत्रों से किम्लान ने पुकार की दिशा में देखा. आखों का बेमोल पानी पोंछकर मुस्करायी. पर उस हँसी में व्यथा की झांई थी. वह रबर के दूध की बाल्टी उठाकर चल पड़ी. ऐसे कि वह यूचिन की पुकार सुन ही न सकी.

"किम्लान." यूचिन ने समीप आकर फिर पुकारा.

"ओह, यूचिन ! दोनों बाल्टियां भर भी ली ! बड़ी फूर्ति की." किम्लान ने वातावरण में नया मोड़ पैदा करने का असफल प्रयास किया.

"रो क्यों रही थी ?"

"कब !"

"अभी. देवता के लिए ठीक बताना कि तुम्हें क्या दुख है ? जो ऐसे जंगल में रो कर उसे हलका कर रही थी."

यूचिन किम्लान से एक कदम पीछे रहकर चल रहा था. "मानो. अभी कुछ न कह सकूंगी. तुम्हारी बहन आंग्हो अपने घर कब जायेगी ?" किम्लान ने टूटे स्वर में पूछा.

"आँग्हो अभी यहीं है."

"मैं उससे मिलूंगी."

"अच्छा."

आगे दोनों की राहें दो थी.

... ...

पुरुष की अपेक्षा नारी, नारी के अंतर्मन के रहस्य को पा लेने में अधिक समर्थ है. वह सहज ही स्नेह की थपकी से, आंखों की राह मानस सागर में गोता लगाकर रहस्य के मोती चुन लेती है.

यह किया आंग्हो ने.

आंग्हो पहली नजर में ही किम्लान के हृदय में डूबी. बोली:--

"बहन, क्या बात है ?"

किम्लान सिर के संकेत से बोली:-- "कुछ भी तो नहीं."

"प्यार के देवता के लिए कुछ तो कहो."

"क्या आंग्हो...?"

यूचिन ने आंग्हो से कहा था:-- "आँग्हो, किम्लान जितनी

सुन्दर है, उतनी ही अच्छी भी है . अभी उसदिन उसकी आंखों की नमी ने मुझे बहका दिया . पूछने पर कुछ न बोली . दर्द में भी हंसी मैंने पहली बार देखी ."

और जब आंग्हो ने शादी के लिए यूचिन से कहा तो वह बोलाः- "भटकी हुई किम्लान . मेरे मन के राज पथ में पैर रखचुकी है . ठहरो और प्रतीक्षा करो ."

यूचिन की बहन में भी भाई की आत्मा थी . वह कैसे भाई की मीठी चाह में अनचाह की कड़वाहट पैदा करती ? सो वह और भी मीठी होकर बोलीः- " छिपाती हो, तभी तो यूचिन के मन में दर्द पैदा कर दिया . "

"कैसा दर्द ?" चौंक कर किम्लान ने पूछा .

" हां, रात को कह रहा था ."

" रात को ! "

" हां , कहो न ! "

किम्लान कोई उत्तर न दे सकी, लगा कि उसके कंठ रुद्ध हो रहे हैं . वह कुर्सी से उठकर खिड़की के पास आकर खड़ी होगई . उसने प्रयत्न किया कि व्यथित मन, चेरी, ऊवी और केलों की हरियाली में खो जाये तो कुछ सहारा मिले . वह अंदर छटपटाहट अनुभव कर रही थी, जिसमें दर्द की मरोड़ थी . वह घूम कर आंग्हो को देखने लगी .

आंग्हो किम्लान की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया भाँप रही थी . बोलीः— "यूचिन तुमसे ...."

और किम्लान ने आगे बढ़कर उसके मुंह पर हाथ रख दिया . बोलीः- "देवता के लिए चुप . सच मुझे वह... "

" मैं ठीक कह रही हूं . "

"पर तेनशोव !"

"वह तुम्हें नहीं चाहता !"

"कैसे मालूम .... !"

"यूचिन ने बताया था !"

"तब....?"

"वह तुम्हें किसी के हाथ बेच देगा !"

"मुझे, बेचेगा...!" कहकर किम्लान फफक पड़ी. आँहो ने उसे बाहों में लेकर छाती से लगा लिया. वह रोती रही.

... ...

"मुझे किम्लान से कोई सुख नहीं, और सच यूचिन, उसे मैं इपोंह से लाया था सुख के लिए. पूरे चारसौ डालर दिए थे उसकी मां को. खैर. अब वह यदि तुम्हें चाहती है तो मुझे क्या ?" तेनशोव ने यूचिन से लिए हुए नोटों को नेकर की जेब में डालकर कहा.

"गड़बड़ न करना. देवता की कसम.. !"

"नहीं.. !"

"अब वह न आयेगी यहाँ" यूचिन ने बात और पक्की की.

"अच्छा.."

यूचिन चला गया.

तेनशोव उठकर घर से बाहर आया. सामने टिन माईनों की फैली सफेद धूल, हरी हरी पहाड़ियाँ, ऊदे ऊदे बादल, और धरती की हरियाली, जो भी नजरों में आया, देखता गया.... देखता गया. मन न माना. हूक उठी. दर्द हुआ. मुट्ठी में नोटों को जोर से भींचते हुए पुनः अंदर चला गया. अफीम के नशे में, मन के दर्द को भूल गया.

... ...

कुल के जितान (सूर्य-मन्दिर) से वरदान लेकर लौटते हुए यूचिन ने कहाः—

"मैंने देवता से कहा था."

"क्या... ?" यूचिन के पुरुषत्व पर मोहित किम्लान ने धीमे से पूछा.

"यही कि तुम .. "

"और मैंने भी... "

दोनों ने एक दूसरे को निहारा. आंखों में नई बुनियादों के साथ नया जीवन हँस पड़ा.

... ...

जिंजाग नोर्थ
केपोंग (मलाया)

२८ अप्रैल, १९५५

"क्या चाहिए *तोके ?"

"चीनी." यह कहते हुए मैंने चाय की ओर संकेत किया. आस्वांग दौड़ी. वापिस आकर चाय में चीनी डालते हुए उसने पूछा:-

"और ?"

"बस."

जब आस्वांग जाने लगी तो सहसा मुझे उसके नये ग्राहक का ध्यान आया. उसे संकेत से रोक कर पूछा:—

"आज यह नया आदमी कौन है?"

"ओह, वह क्या ?" आस्वांग ने उसकी ओर हाथ करके कहा.

"वही...वही." मैंने चाय की घूंट लेकर कहा.

"बड़ा हृदयहीन है." आस्वांग के स्वर में घृणा का पुट था.

"हृदयहीन... !"

"हाँ, मैं उसके विषय में तुम्हें कुछ नहीं कह सकती. एक डायरी दूंगी. तुम उसे पढकर जान सकोगे कि यह चू- तेह हृदयहीन क्यों है ?"

"ठीक है."

चू- तेह ने उसे आवाज लगाई सो वह बीच में ही उठकर उधर भागी.

मैंने "डायरी" के विषय में सोचते हुए चाय पी डाली. जब उठकर चलने लगा तो एक कौने में बैठा चू- तेह चाईनीज दैनिक पत्र "युत्सांग" की सतरें देख रहा था.

... ...

एक दिन खाली समय पाकर आस्वांग की दी हुई डायरी के पन्ने पलटने लगा.

---

* "तोके" भाषा मलायू का सम्मानजनक सम्बोधन शब्द है.

१ जनवरी, १९५०

आज बाटूकेव गया. वहाँ हमारी सिक्रेट सोसाइटी की मीटिंग थी. छुङ्गफोई बढ रहा है. वह अपनी सजगता और कर्मठता के कारण कुछ ही दिनों में अगुआ बन गया है. प्रत्येक कार्य उसकी राय से होता है. खतरे के कामों को सम्पन्न करने के लिए उसी को चुना जाता है. पता नहीं उसकी धमनियों में कौन सी फौलादी ताकत है. मैं यह प्रयत्न करके भी नहीं जान सका. अवश्य ही उसके मन में लगन की जोत है.

छुङ्गफोई के जीवन का यह सुनहरापन मैं नहीं देख सकता. वही अकेला कोई आकर्षण बिन्दु नहीं है. मैं भी हूं...मैं भी हूं...

...				...				...

१० जनवरी, १९५०

जिस प्रकार बाटूकेव की चढाई में सिर घूमने लगता है. शरीर थक जाता है. मन क्लांत हो जाता है, उसी प्रकार इस छुङ्गफोई को समझने में हो रहा है.

आज मैंने मीटिंग में एकांत पाकर सदस्या आश्वांग से कह दिया कि वह छुङ्गफोई को रोके. कितना आगे बढ़ रहा है ? यों न सोचना कि मैं उससे द्वेष करता हूं. लेकिन वह यही क्यों सोचता है कि जोखिम का प्रत्येक काम करने की शक्ति एकमात्र उस में है. मेरी भी कुछ हस्ती है. क्यों नहीं वह मुझे चुनता ? वह अकेला ही मौत से खेलना नहीं जानता, यह न समझो. उसके साथ तुम्हारा गहरापन है इसी से मैं कह रहा हूं, कुछ करने का मुझे भी अवसर मिले.

और आश्वांग ने हाँ भरली:

साथियों के आने पर मीटिंग में आश्वांग ने कहा कि पार्टी साहसिक कार्य करने का अवसर अन्य साथियों को भी दे. जिससे मन

का भय दूर हो. काम करने की शक्ति का विकास हो. इसलिए आज में कामरेड चू-तेह का नाम प्रस्तुत करती हूं. वही आज रात को जिंजांग के कटीले तारों के उस पार जंगल में रहने वाले पार्टी सैनिकों के लिए चावल और दवाइयां आदि ले जाकर दे. आश्वांग का प्रस्ताव सभी ने मान लिया.

सच, उस वक्त मैंने आश्वांग को अनेक धन्यवाद दिए. मेरा मन खुशी से बाँसो ऊपर उछल पड़ा. उछलता क्यों नहीं ? आज ही तो मेरे मन की मुराद पूरी हो सकी है.

छङ्गफोई ! अब तुम देखना मेरा आगे बढना. आज तक मैं तुम्हें देखता था. अब तुम मुझे देखना.

छङ्गफोई, चू-तेहः

चू-तेह, छङ्गफोईः

... ...

१५ जनवरी १९५०

उफ...! मन संतप्त. आत्मा कुंठित. शरीर की सभी सक्रिय शक्तियां श्लथ. कैसा था वह अनुभव...?

रोमाँचकारी. आत्मा को कंपादेनेवाला.

सनसनाती गोली...... अंधेरा .. कटीले तार...

मरा नहीं. बच गया. काम भी पूरा न हो सका. साथी भी भूखे रहे.

मर जाता. मेरा मुंह तो कोई न देखता.

पर जीवन का मोह .. प्रेय...

हाय, यही तो हेय है.

छङ्गफोई...?

मेरा प्रतिद्वन्द्वी. आत्म सम्मान की रड़क.

वह मेरे डगमगाते कदमों को निहारकर बढ़ता जायेगा ..... बढ़ता जायेगा.

और एक दिन आकाश की उत्तुंगता में समा जायेगा.

नहीं... नहीं...

आश्वांग. पार्टी के अन्य साथी.

सभी की उपाहासास्पद भावना. असह्य... असह्य...

... ...

१६ जनवरी, १९५०

प्रतिशोध की आग. निरंतर उत्पन्न होती हुई मन की जलन.

जल रहा हूं. जल रहा हूं.

किससे कहूं ? किसके सम्मुख प्रकट करूं ? कौन है मेरा ?

पार्टी मीटिंग में भी नहीं जा सका.

मेरे असफल होने की प्रतिक्रिया...

बुजदिल. असावधान. ..

सजा... मौत...

छुङ्फोई...

स्वप्न में भी...

मेरी डायरी...

मन की भावनाएं दुनियाँ से छिपी रहेंगी. केवल तुम जानती हो... तुम...

तुम्हें भी न बताऊं तो घुट घुट कर मर जाऊं.

जीने से मोह...

... ...

२० जनवरी, १९५०

आज मन हलका है.

:

प्रतिशोध की आग. मन की जलन. सब शान्त...

वह पालिया जो चाहिए था...

छुङ्गफोई,

अब धरती पर आगे न बढ़ सकेगा. मेरा उपहास न कर सकेगा.

छुङ्गफोई,

तुम मेरे प्रतिशोध के शिकार हो गए.

मेघों की काली छाया में,

उन्हीं कटीले तारों के पास तुम्हारे बढते कदम- जहां मेरे कदम मुड़ गए थे- मैंने सदा के लिए रोक दिए.

मेरे पिस्तौल की गोली खाकर "अ.ह" भी न कर सके.

पर तुमने मर कर भी तारों के पार खड़े साथियों को राशन तो पहुँचा ही दिया. मैं जीकर भी न दे सका.

... ...

आगे डायरी के पन्ने सफेद पड़े थे.

... ...

मैंने डायरी आश्वांग को देदी. वह बोलीः—

"हृदयहीन ठीक कहा था न ?"

"हाँ, उसके बाद क्या हुआ ?" मैंने पूछ लिया.

"चू-तेह वोनियो चला गया उसके बाद. छुङ्गफोई के चले जाने से मेरा मन भी पार्टी के कार्यों के प्रति विमुख होगया. मैंने उसकी सदस्यता त्याग दी. फिर पार्टी का क्या हुआ ? पता नहीं."

"पार्टी छोड़ने का कोई और खास कारण होगा ?"

मेरे इस कथन के उत्तर में आश्वांग कुछ न कह सकी. केवल मुस्करा भर दी. मैंने देखा उसकी वेदनायुक्त मुस्कराहट में लज्जा की हलकी कौंध भी थी.

... .

मेरा घर उन कटीले तारों से भीतर की तरफ बीस कदम दूर है. घर के पोर्च से ही उनका वह पूर्वी उत्तरी कोण दीख पड़ता है जहाँ छुक्कफोई के बढ़ते हुए कदम चू-देह ने रोके थे. आते जाते जब उस ओर मेरी नजर पड़ती है तब लगता है कि कटीले तार अंतराल में धंसकर अपनी रगड़ से भावनाओं की गहनता में घाव कर रहे हैं. जिनसे वेदना रक्त के रूप में बह रही है.

... ...

जिजांग नोर्थ १५ अगस्त, १६५५

क्रेपोंग (मलाया)

नया मोड़

दरवाजे पर पड़ती हाथ की थाप से मैं समझा कि कौन है ? उठकर दरवाजा खोला. हँसते हुए मेरे मकान की मलय मालकिन की बेटी नूरन ने प्रवेश किया. वह मेरे बराबर की कुर्सी पर जा बैठी. मैंने दरवाजा खुला छोड़कर ही अपनी जगह ली.

"हलो देव ! क्या हो रहा था ?" नूरन ने पूछा.

"खास कुछ नहीं. बस, कोई हिन्दी पेपर पढ रहा था, और..."

"मैंने आकर बाधा डालदी. क्यों ? माफ करना."

"इस वक्त आने का मतलब ? तुम्हें पता है कि अभी मैं सेकण्ड शो देखने जाऊंगा."

"या अल्लाह ! सेकण्ड शो ! तबाह कर दिया."

"तबाह !"

"हाँ, और क्या ? कल हमारे कालेज में डिबेट है. सबजैक्ट है 'मनुष्य और उसकी जातीयता के बंधन' देखते हो कैसा कठिन है ? मुझे तो कुछ सूझ ही नहीं रहा कि क्या बोलना चाहिये ? प्रिंसिपल जेम्स ने विशेष रूप से कहा है कि तुम्हें डिबेट में अवश्य भाग लेना होगा."

"ठीक है. पर तुम मुझसे क्या चाहती हो ?"

"यही कि तुम अभी सेकण्ड शो देखने न जाओ. मुझे बोलने

के लिए एक शानदार स्पीच बनादो. मैं तो तीन जन्म में भी न लिख सकूंगी."

"तुम भी खूब हो, सांस ही नहीं लेने देती."

"लिखदो न. तुम्हारे लिए तो हँसी खेल है और मेरा काम बन जायेगा." यों कहकर नूरन अपनी कुर्सी छोड़, मेरे पीछे आकर खड़ी होगई. मेरे लम्बे बालों में अपनी कोमल अंगुलियां फंसाकर खुशामद करने लगी:—

"क्यों, लिखदोगे न ?"

"अच्छा बाबा. अब भाग जाओ."

"तब ठीक है. भूलना मत. हैं .... हाँ...नहीं... तो..." नूरन मेरे सिर पर झुक आई. अचानक ही उस शैतान ने मेरे माथे का चुम्बन लिया और फुर्र होगई. उसके अधरों के उष्ण स्पर्श से नशें कुलबुला उठीं.

... ...

हँसी आती है मुझे अपने आप पर. मैं.... फेरी का काम करने वाला...पैसा...और...पैसा. जैसे जीने का अर्थ मलाया में आने के बाद बदल गया. साहित्य दर्शन और राजनीति आदि सब वहीं हिन्दुस्तान में ही रह गए. लगता है मलाया में—वह जो कुछ मेरे देश हिन्दुस्तान में है— है ही नहीं. यहाँ यदि मेरे दिमाग में कुछ है तो अंगरेजों के बंगले और उनकी अजीब शक्लें. बस यही दिन रात मन में चक्कर लगाता रहता है कि कहाँ कौन नया आया है ? कौन इंग्लैंड जानेवाला है ? किसने किस किस चीज के लिए कहा है ? कितने पैसे लेने हैं ? विशुद्ध मजदूर और आर्थिक जीव हो चुकने पर भी लिखता हूं. कलम चलती है. कल्पना के सुखी संसार में मानस को भरमाता हूं. काश ! कल्पना के अनुसार ही जीवन का निर्माण होता. लेकिन कल्पना और

वास्तविकता दो चीजें हैं. कल्पना उड़ना जानती है. वास्तविकता धरती पर रेंगकर ही चल सकती है. उसमें उड़ने की ताकत ही कहाँ? फिर दुख सुख का अतिरिक्त बोझा. विचारों का यह शोरगुल काफी विदग्ध करता है. पेट की परेशानियों के मारे विदग्धता ही घाटे में आई है. सो उनसे संत्रस्त भावनाओं के वशीभूत होकर लेखनी चलती है. लेखक होने का दुःख !!

और इधर यह है नूरन .. सब तरह से स्वतंत्र. मैं चलता फिरता उठाऊ चूल्हा और उस पर हिन्दू. वह किसी मुसलमान की हो जानेवाली औरत. क्या सामंजस्य....? फिर भी मुझसे वह हेत लगाती है. अपनी आँखों का विवश उन्माद लेकर, मुझे अपने आप में आलिप्त करना चाहती है. कभी यह बताओ. कभी वह बताओ. यह करो. वह करो. गोया मैं उसका... पर वह बेचारी कब मेरी इच्छा के विरुद्ध करती है. उसने आजतक मेरे मूड का आभास पाकर उसके अनुकूल ही हरेक पग रखा है. उसके लिए मन ही मन आकर्षण अनुभव कर रहा हूं. उसकी चंचलता, निच्छलता और रूप सभी तो मन को भाते हैं. क्या अच्छा नहीं लगता? मेरी सांसारिक बुद्धि जानती है कि यह सब क्षणिक एवं व्यर्थ है. कोई मोल नहीं. पर हृदय है मानता नहीं. आदमी ही तो ठहरा. क्या करूं? यद्यपि मेरा कोई बुरा इरादा नहीं. और न मैं उसके लिए यही कहूंगा कि मैं उससे प्यार करता हूं. क्योंकि यहाँ (मलाया में) प्यार की परिभाषा ही और है. यहाँ प्यार का अर्थ है पैसा और भोग !

...

... ...

मैं कमरे का चिरपरिचित ताला गायब देख चकराया. उसके स्थान पर दूसरा ताला झूम रहा था. मैंने यह अंदाज लगाते देर न की कि यह कारस्तानी किसकी है?

"नूरू....!" मैंने आवाज लगाई.

पर नूरू की जगह उसकी मां ने खिड़की का पर्दा हटाकर, बाहर झांका और कहा:—

"क्या बात है?"

मैंने नूरन की मां की तरफ देखकर ताले पर नजर डाली. वह समझी और हँस पड़ी. कहा कुछ नहीं.

"आची,❀ आज क्या मामला है?" मैंने ही पूछा.

"आओ आवांग,+ चाय पीलो." मेरे प्रश्न का बेतुका उत्तर मिला.

"नहीं आची. अभी पीकर आया हूं."

"तो क्या है? और सही."

आची के अनुरोध को टाल न सका. सो जाना पड़ा.

चाय पीते वक्त नूरन की मां ने पूछा:—

"काम कैसा है?"

"रोटियों का इंतजाम कर लेता हूं."

"सो तो जानती हूं. कुछ बचता भी है?"

"डालर का डालर ही खर्च हो जाता है."

"नगरी (देश) भेजते हो कि नहीं?"

"किसको?"

"कोई नहीं?"

"हैं. दो भाई. उन्हें जरूरत नहीं."

"तो अकेले हो."

"हाँ."

"शादी क्यों नहीं करते?"

❀ भाषा मलायू में 'आची' बड़ी बहन को कहते हैं + बड़ा भाई

"दुनियाँ करती है, मैं नहीं करूंगा तो क्या बिगड़ता है?"

"रोटियां आराम से मिलेंगी."

"वह तो आची, अब भी मिलती हैं."

इस बीच मेरे कप की चाय समाप्त होते देख आची ने उसे फिर भर दिया. मैं नां नां करता ही रह गया.

चाय पी चुकने पर मैंने नूरन के लिए पूछा.

"तुमने उसे बड़ा मुंह लगा रखा है. बाद में तुम्हें ही तकलीफ देगी." आची ने कहा.

"कैसी तकलीफ?"

"अरे हाँ. आज तो वह मेडल जीत कर लायी है."

उत्तर मेरी मुस्कराहट ने दिया.

जब मैं उठकर बाहर आया तो देखा— कमरा खुला हुआ है. मैं, कपड़े बदलकर कुर्सी पर बैठा ही था कि पीछे से मेरी आंखें बंद करली गईं. उन सुकोमल हाथों का स्पर्श आंखों को बड़ा अच्छा लगा. जानकर भी— यह बताने के लिए कि कौन है? अनजान बना रहा. कुछ क्षणों बाद ही मेरी पीठ पर कुर्सी की जाली में से घुटने का हल्का आघात किया गया कि मैं बोलूं. पर मैं तो न बोलने के लिए ही चुप था, सो न बोला.

"मैं नहीं बोलती." कहकर आंखों को छुट्टी दी गई.

मैंने घूमकर देखा— अल्हड़ नूरन जारही थी. चिढाने की गर्ज से कहा:—

"हार गई."

वह रुकी.

"रुको मत. सीधी चलती जाओ."

"नहीं जाती. नहीं चलती." वह घूमी.

"टांय टांय फिस्स...!"

"टांय...टांय...फिस्स..." यह कहने तक वह मेरे बिलकुल समीप आचुकी थी.

"यह तो मैं जानता था."

"क्या ? अच्छा बताओ क्या इनाम दोगे ?"

"मेरे पास क्या है ?"

"है. यदि देना चाहो."

"पर क्या ? मैं गरीब .."

"तुम और गरीब ! तुम जैसे आदमी को पाकर कौन खुश नहीं होगा ?"

मैंने नूरन के मन के चोर को पकड़ा. वह भावुकता में बहकर भटकने को उत्सुक थी कि मैं बोल पड़ाः— "नूरन, तुम्हारी अम्माँ कह रही थी कि तुम..."

"मैं क्या ?" नूरन न जाने क्या अर्थ समझकर घबरा सी गई.

"कि तुम आज मेडल जीतकर लाई हो."

"या अल्लाह !" कहते हुए नूरन के मुंह पर रौनक लौट आई. उसने कहाः—

"मैं न जाने क्या समझी ! हाँ, मैं मेडल के लिए तुम से कहना चाहती थी. डिबेट में मैं जीती. प्रिंसिपल जेम्स ने मेरी पीठ ठोकी. कई मलय युवक मेरी ओर खिंच आये. उन लड़कियों का पानी जाता रहा जो यह समझे थीं कि वे ही जीतेंगी. सच तुम्हारे तर्क अकाट्य थे. एक प्रोफेसर ने कहाः— ये विचार और तर्क तो हिन्दू फिलासफी के हैं. पर मैं थी कि चुप. और फिर मैं यह कहने भी क्यों लगी कि ..."

"यह मिस्टर देव ने लिखा है," मैंने वाक्य पूरा किया

"यह रहा वह मेडल." नूरन ने अपनी विजय की निशानी

दिखाई.

मेडल को हाथ में लेकर मैंने देखा. लौटाते हुए कहा:—

"बड़ी खुश किस्मत हो."

"मैं......!"

"और तुम भी."

इसके तुरन्त बाद ही नूरन अपनी वही पुरानी हरकत दोहरा कर भाग गई.

... ...

करीबन दो महीने बाद मैं फेरी से लौटा. बीते दिनों में खाने पीने का ठीक ठिकाना न होने से पेट में गड़बड़ी हो गई. पहले दिन शरीर टूटता हुआ सा लगा, दूसरे दिन बुखार हो आया, सो बिस्तर पर ही पड़ा रहा. किसको कहता ? विदेश में कौन अपना ? मन में यह रह रह कर खटकने लगा.

अंदाजन दिन के दो एक बजे होंगे. बाहर से किसी ने मुझे पुकारा.

मैं आवाज पहचान गया. नूरन की मां थी.

"आची, अन्दर आजाओ." मैंने पड़े पड़े ही कहा.

आची ने अन्दर आकर मुझे देखा भाला. दुःख से बोली:—

"इतनी तेज बुखार...! या अल्लाह त्वान! कहा तक भी नहीं."

मैं निःशब्द पड़ा रहा. कहता भी क्या ? प्रेम का उत्तर मूक भाषा में ही दिया जा सकता है. कहकर नहीं.

आची ने मेरे माथे पर प्यार से हाथ फेरा. मैंने आंखें बंद करली. बिना कुछ कहे वह चली गई. जब वह लौटी तो सड़क पर स्थित डिस्पेंसरी के डा० सुंदरम् को लिए. डाक्टर ने अपना काम किया. और लौट गया. आची भी. मैं नूरन के लिए पूछना चाहकर

भी न पूछ सका. फिर अकेला था, तकलीफ में अकेलापन काटे नहीं कटता. दर्द कुरेद कर घाव हरा कर देता है. मुंदी आंखों में दुःख ठहर न सका. रोने लगा. एकायक मुझे नूरन के हाथों के स्पर्श का आभास हुआ. उस हालत में कुछ कहना या पूछना दुश्वार लगा.

नूरन मेरा सिर अपनी गोद में रखकर हाथ फेरने लगी. उस वक्त हाथों से मुझे जो सुख प्राप्त हुआ वह अनिर्वचनीय है, न जाने कब नींद आगई.

... ...

कई दिन बिमारी की ओट से होकर निकल गए, कह नहीं सकता कि इस बीच मलाया के बादलों ने कितना पानी बरसाया ? कितनी सुख की सुबह और शाम आकर चली गई ? कितने गैर ग्राहक चले गए ? कोई लेखा जोखा नहीं.

... ...

एक दिन चहकती रहने वाली नूरन, चुप, स्थिर और अपने में खोई सी मेरे पास आई. कहने लगीः—

"देव, घूमने चलोगे ?"

"कहाँ ?" मैंने उसके चेहरे के भावों को टटोलते हुए पूछा.

"यहीं. ईपोह रोड के किनारे किनारे उस रबड़ के बगीचे तक. मन में गुदगुदी करनेवाली साँझ है."

"अच्छा, चलो."

"मैं तुम्हारे साथ हूं तकलीफ नहीं होने दूंगी."

मेरे तन में हिम्मत ज्यादा नहीं थी, पर नूरन का मन रखने के लिए यह किया.

सड़क पर कुछ कदम चलने के बाद समस्यात्मक स्वर में नूरन

बोली:—

"देव, तुमने उस दिन मुझे जो स्पीच लिख करदी थी, उसमें वास्तविकता कहाँ तक थी ? क्या वैदिक फिलासफी मनुष्य के इतने ऊँचे विचार बना देती है ?"

मैंने चलते हुए नूरन के प्रश्न को ध्यान से सुना. कहा:—

"क्यों तुम्हें शक है ?"

"यह बात तो नहीं. मन में विचार आता है कि मानव मष्तिष्क का इतना उन्नत विकास है. फिर मेरे देश के ये राजा, सुल्तान इतने छोटे घेरे में क्यों हैं ? इन लोगों ने यह नियम क्यों बना रखा है कि कोई भी मलय स्त्री पुरुष धर्म परिवर्तन नहीं कर सकता. इसका अर्थ तो यही है कि ये मानव की जिज्ञासु आत्मा को पराधीन रखना चाहते हैं !"

"गम्भीर विचार की आवश्यकता है."

"सोच तो रही हूं आज दो दिन से. मनुष्य जिन्दगी के थोड़े से वर्षों के लिए ये सीमाएं निर्मित कर स्वयं को क्यों बांध लेता है ?"

"तुम्हें याद होगा. मैंने बताया था कि आदमी जन्म से एक होता है. उसमें कोई फर्क नहीं. मरते वक्त तक उसकी आदतें समान रहती हैं. पर वातावरण के प्रभाव से उसके विचारों में अन्तर आजाता है. वह अन्तर मन और मष्तिष्क के कोमल हिस्से पर अमिट लकीर बनकर ठहर जाता है. यही वह असर है. जिसका फल तुम्हारा प्रश्न है."

"लेकिन... !"

"ठहरो. एक लम्बे अर्से से मनुष्य जिन परम्पराओं, विचारों एवं राहों में मरता जीता आरहा है; वही उसे प्रिय हैं. इतर कुछ नहीं. वह वक्त उसे जहर सा लगता है, जबकि उसकी चिरसंचित

धारणाओं और मान्यताओं पर परिवर्तन के प्रभाव की ठोकर लगती है, उसके बनाये कानून टूटने और बिखर कर भूलुण्ठित होने लगते हैं. संसार के प्रारम्भ से लेकर आज तक मानव की यही कोशिश रही है कि उसके प्रथक श्रम से एक बार की कृति, निर्मित हो पुनः वह अनश्वर रहे. पर यह परिवर्तन की विराट सत्ता है, मनुष्य लड़ झगड़ कर भी सिर नवा देता है. इन संघर्षों में हर बार विजयश्री परिवर्तन के साथ ही आती है. लघु मानव का अहंकार टूटने लगकर विजिगीषु के निर्देशन में अभियान चलता ही है. इस प्रकार एक बार जो परिवर्तन होकर आँखों के सम्मुख आया वही इन्सान ने अपना धर्म, जीवन तथा आगे चलकर सर्वस्व समझा. हमारे भारत में राजपूत जाति की वीरांगनाएं, युद्ध में मृत अपने पति के साथ चिता में जीवित ही भस्म हो जाती थीं, पर आज कोई नहीं होगी. उस प्राचीन युग में ऐसा करना स्वर्ग तुल्य था, धर्म था. और अब ऐसा नहीं समझा जाता. क्यों? केवल परिवर्तन के चक्कर से. सोचो, झुकता है. आदमी हारकर अपने को बदल लेता है. यही आवर्तन चलता आ रहा है. चलता रहेगा."

"लेकिन यह परिवर्तन करता कौन है? मनुष्य स्वयं तो यह नहीं चाहेगा."

"परिवर्तन स्वयं मनुष्य की सुप्त शक्तियाँ करती हैं, जोकि सदैव ही अभिनवता ग्रहण करती रहती हैं. ये कब अंकुरित होकर फलती फूलती हैं, विदित नहीं हो पाता. एक जमाना आता है कि ये ही पुरजोश से जमाने की धरती में भूकंप पैदा करती हुई पुरातनता को छोड़कर अपने प्रेय के गले जा लगती हैं."

"क्यों होता है? यदि न होता तो क्या आदमी मर जाता?"

"हाँ, परिवर्तन के साथ 'न' का प्रयोग चिरशांति है उसका अभि-

प्राय ही हलचल, अविराम गतिक्रम में गतिमान रहना है. बिना गति के यह सारा संसार पथरा जायेगा. सोचो तो, एक बार अपनी पृथ्वी गतिहीन हो जाये. शेष क्या है ? केवल प्रलय...अंधकार."

"तुमने सब कुछ कह दिया. पर मेरा प्रश्न हल न हुआ." नूरन परेशानी से बोली.

"और क्या रह गया?" मैं भी हैरत में था.

इसी बीच—

सड़क से हटकर एक नदी पड़ती थी—सो हम उसी ओर मुड़े.

मलाया में सूखी साँझ कम आती हैं. जो आती हैं वे बड़ी रुचिकर और अंतस् में उल्लास भर देने वाली. ऐसी ही वह साँझ थी.

"नूरन मैं थक चला. इच्छा होती है कि बैठ जाऊँ." मैंने नदी की ओर मुड़ने वाले ढलवां रास्ते पर पैर रखते हुए कहा.

"बैठेंगे. पर पानी के पास. बड़ी बेरहम हूं जो इतनी दूर घसीट लाई."

ममतामयी नूरन मुझे देखती हुई ढलाव पर पग बढ़ाने में मगन था. सो ध्यान न रहा कि जरा आगे फिसलन भरी कीचड़ है. कीचड़ पर पैर टिकते ही वह रपटी, और कुछ ही दूर नदी में जा गिरी. मैं क्षणिक आवेश में अपनी शारीरिक दशा भूल कपड़ों सहित पानी में कूद पड़ा. जल्दी ही उसे पकड़े किनारे आ लगा.

नूरन को बचा लिया यही खुशी थी.

घर आने पर आची को यह घटनाक्रम विदित हुआ तो भाग कर मेरे कमरे में आई. उल्लास से मुझे बांहों में भर लिया. हर्षावेग में बोली:— "मैंने कई किरायेदार देखे, परन्तु तुमसा नहीं." और अन्त में वह मेरे सिर को सूंघ कर चली गई. मैं अवाक रहा.

एक दिन मैंने नूरन की अनुपस्थिति में मकान छोड़ दिया. बात यह हुई कि— आची को किसी पड़ोसिन ने भर दिया कि तुम्हारा किरायेदार समसिन और अयादोपाह (गुण्डा और आवारा) है. सो न रखो. यह कहना सीधा नूरन की खिलती हुई उम्र की ओर संकेत था कि उसे खराब कर देगा. इसी वहम में मुझे मकान खाली कर देने के लिए कहा गया.

मैं आची का रंगढंग देखकर सारा मामला समझ गया. अब मकान न छोड़ने के लिए फिट्टा बनने की हिम्मत मैंने नहीं की.

... ...

सिगरेट पीता नहीं, इसलिए उसके धूंए के अभाव में, मैं गर्म चाय के प्याले से उठती भाप की टेढीमेढी घूमती गोलाइयों में स्वयं को भूल जाता हूं. कठोर श्रम के बाद शरीर थक जाता है, लेकिन मन नहीं. इसीसे वह दौड़ता है, उसके साथ भावनाएं दौड़ती हैं.

उस दिन मांऊंटबैटन रोड में स्थित लिलिकोंफी में बैठा चाय की गोलाइयों में लीन था. एकाएक नूरन ने आकर मेरी विचार तरंगों में एक नई खलबली पैदा करदी. मेरे पास कुर्सी पर बैठ चुकने पर वह बोली:—

"देव ! उस दिन की घटना का मुझे बड़ा दुःख है."

"स्वभाविक थी."

"फिर नहीं मिले तुम."

"किराया तो मैंने चुका दिया था."

"तुम हमेशा मन में दर्द ही भरते हो."

"तो फिर... ."

"आजकल कहाँ रहते हो ?"

मैंने उत्तर में अपने नये पते का विजिटिंग कार्ड निकाल कर नूरन

को दिया.

"शाम को घर मिलोगे ?"

"घर ही रहता हूं."

"ठीक है." यह कहते हुए वह उठी.

"कुछ तो... चाय... काफी... ओरेंज......"

"अभी नहीं."

"क्यों भला ?" यह कह कर मैंने नूरन का हाथ पकड़कर रोकने का प्रयत्न किया.

"अभी नहीं देव. छोड़दो." भरे स्वर से नूरन ने कहा. उसकी पलकें भीगी सी लगी. वह मुख मोड़कर चली ही गई.

उसकी भीगी पलकें...... भरा स्वर.. !

... ...

शाम को:—

मन में नूरन की प्रतीक्षा थी. वह आई. पर विस्मय बनकर. उसे देखते ही जो भावनाएं उठी. उन्हें उस पर व्यक्त न होने दिया. वह आकर कुर्सी पर बैठ गई. मैं कमरे की खिड़की के सहारे खड़ा उसे देखता रहा. साड़ी से परिवेष्टित होकर वह एक हिन्दू सुगृहणी लगी. मलय वेश की अपेक्षा भारतीय साड़ी ने उसकी सौंदर्याभा में चार चांद लगा दिए. उसकी बड़ी २ निच्छल आंखों में सुपरिचित नारीत्व झांक रहा था.

"खड़े खड़े देखते रहोगे. बैठोगे नहीं." नूरन बोली.

"हाँ. आज यह साड़ी कैसे ?"

"कैसी लगी ?"

"बहुत खूब."

"सच." यह कहते हुए नूरन, कमरे में धुंधलका होता देख

उठी और स्विच आन कर, पुनः कुर्सी में समा गई.

बिजली के तेज प्रकाश में देखा— वह उदास भी है. पूछाः—

' उदास कैसे हो ?"

"तुम पूछ रहे हो ?"

"और कौन है ?"

वह अपने आप में डूबकर कहने लगीः—

"जानते हो. दो सप्ताह बाद मेरी निकाह होगी."

"प्लीज टेलीग्राम.', बीच में ही एक दूसरा स्वर आया.

मैंने बाहर जाकर तार लिया. पढा— बड़े भाई ने हिन्दुस्तान से लिखा था—

"अपनी शादी के लिए जल्दी आओ." मन में क्षण भर के लिए देश घूमा. तार जेब में डालकर अंदर आया. कहाः—

"नूरन ! तुम्हारी निकाह ही होगी.',

नूरन एकाएक भावावेश में उठकर मेरे पैरों में आ लिपटी. सुबककर बोलीः—

' नहीं देव! वह नहीं."

"पर क्यों ?"

"तुम्हारे व्यक्तित्व का प्रभाव मेरे मानस पर छा चुका है. बोलो .. "

"तुम .... म......" मैं आगे कुछ कह नहीं सका. समझा कि नारी की करुणा कैसी हृदयद्रावक हो उठती है ? पत्थर भी पानी हो जाता है. आह ने भयंकर मरोड़ दी मन की समस्त शक्तियां हिल उठी. सोचा— मेरे पास क्या है ? जो यह...... मलाया में रूप के उपासक ही हैं. में अरूप. न शकल न सीरत.

"देव, तुम्हारे मन की नींव में भावनाओं की अपेक्षा पत्थर..."

व्यथा में कंठापूरित नारी बोल ही कब सकी है ?

मर्मांतक चरम सीमा थी.

पड़ौस में किसी के रेडियो से एक मलय गीत गूंज उठाः—

"सा ऽऽऽ या मांऊ.

समा ऽऽऽ आवा."

(मैं तुम्हें चाहती हूं.)

... ...

भाई को तार का उत्तर दिया—

"मेरे समस्त जीवन का नया मोड़ है. शादी कर चुका.

... ...

जिंजांग नोर्थ
केपोंग (मलाया) १५ मार्च, १९५५

तीसरी मंजिल से

"यहीं बैठ जायें." अब्दुल बिन रहीम ने रम्भूतान की ठंडी छाया में रुककर कहा.

"यहीं क्यों ? घर तो आ ही गया. मां तो शायद घर में नहीं है. आओ न..." फातिमा दीन ने अनुरोधपूर्वक कहा.

"वहाँ नहीं. यहीं ठीक है." रहीम घास पर बैठ चुकने पर बोला.

"क्यों भला... " फातिमा दीन आगे बात न बढा कर वहीं रहीम की बगल में बैठ गई.

"फातिमा ! मैं ड्राइवर भी हो गया. अबतो......" रहीम की नजरों में विवश याचना की भावना छा गई.

"अब तो...... यही समस्या मेरे सामने है, मैं चाहती हूं पर मेरे बस की बात नहीं. रहीम तुम नहीं जानते कि मुझ पर क्या बीत रही है ?"

"जानता हूं कि तुम्हारी अम्माँ ....." बात बीच में ही रह गई.

"तुम्हारी अम्माँ......क्या...? कहो न."

"क्या कहूं. अम्माँ से तुमने क्या कहा ?"

"कहा तभी तो यह देखो....." फातिमा ने यह कहते हुए

अपनी गोरी गोरी पीठ का कपड़ा हटाकर पीठ उसके सामने की.

रहीम ने कोमल चमड़ी पर दो तीन लम्बे निशान देखे. उसने फातिमा की पीठ पर अपना हाथ मृदुलता से फेरकर कहा:-

"यह क्या ?"

"कल रात को अम्माँ ने मुझे रातांग (बेंत) से पीटा ! वह नहीं चाहती कि मैं ..... " आगे फातिमा की आवाज भर्रा गई. वह कुछ रुककर नम आवाज में कहने लगी:- "तुम मुझे प्यार करते हो. मेरी पीठ पर तुम्हारे हाथ का कोमल स्पर्श यही तो कह रहा है. लेकिन रहीम, तुम्हारा मन मेरे लिए बेकार है. मां बिना पैसे के मिठास को व्यर्थ समझती है. मेरे निकाह से मां के जीवन का आनेवाला सुख लुट जायेगा. उस सुख को प्राप्त करने के लिए उसकी नसों में दौड़-नेवाला रक्त सूख जायेगा. वह जी कैसे सकेगी ?"

"क्या करूं फिर . ?"

"कर भी क्या सकते हो ? जाओ. अब मेरे पास न आना. मेरे जीवन में यह नहीं है कि तुम मेरे लकी (पति) बन सको. मां को अपनी इन बातों का पता चल गया तो अधमरा कर देगी."

अपढ रहीम तर्क न कर सका. वह मन पर दुःख की धुंधली छाया लिए लौट पड़ा: उसने इतना ही सोचा कि अल्लाह त्वान (ईश्वर) यह नहीं चाहता.

फातिमा लौटते हुए रहीम को अपलक दृष्टि से देखती रही. उसकी आँखों में नमी छा गई. रोती आवाज में फुसफुसाई—"या-अल्लाह त्वान." वह उठी. चलते हुए उसने अपनी महीन चुन्नी से पलकों में अटकी नमी को सुखाया और देखा कहीं मां तो नहीं है.

... ...

"यह रोना किसलिए ? क्यों ये बड़ी बड़ी आंखें खराब कर रही

है ? मुरझाई आंखों पर कौन आयेगा ? मैं तो एक दिन भी नहीं रोई थी. पहले दिन मेरे आदमी ने छोड़ा और दो तीन दिन बाद एक अंगरेज के यहाँ कुक्की (रसोइन) का काम करने लगी. तू उसी की बेटी है. वह होता तो हमें कोई कष्ट न होता. पर उसे तो कम्युनिस्टों ने गोली से उड़ा दिया. अब मेरा बुढापा और तेरी जवानी. अब तुम्हारे सिवाय मेरा और कौन है ? तू ही तो चावल मच्छी देगी." फातिमा दीन की वाब अम्मां ने उसे समझाया.

"अम्मां, जिस रास्ते से तू गुजरी, क्या मैं भी उसी पर चलूं, यह जरूरी है ? मैं मर जाऊँगी. जो कुछ तुमने किया, वही मुझसे करवाना चाहती हो. कैसे होगा ?" फातिमा ने सिसकती आवाज में कहा.

"होगा और जरूर होगा. मेरे लिए तुम्हें वह सब कुछ करना होगा समझी."

"नहीं अम्मां, तुम कहो तो किसी अंगरेज के यहाँ नौकरी करके तुम्हें खाने पीने की चिंता से मुक्त कर सकती हूं. बाकी बाज़ार में घूमकर किसी की मर्जी का सौदा बनकर, तुम्हें कितने दिन सुख दे सकूंगी ?"

"नौकरी में रक्खा क्या है ? मुझे यहाँ के अमीर आदमियों का खूब अनुभव है. वे नौकरानी से औरत का काम भी लेते हैं. यदि एक ही काम से अच्छे पैसे मिलें तो क्यों नहीं वही काम किया जाय ? नौकरी में हजारों दिक्कतें." फातिमा की मां पाहाँग-रिवर* (नदी) सी गंदगी लिए बह रही थी. उसके हरेक विचार की लहर में गंदगी और कूचरा ही मन के किनारे से टकरा रहा था.

आगे फातिमा ने मां की बातों का प्रतिरोध नहीं किया. चूंकि उसे खयाल था अधिक जिद से पीठ पर फिर दो चार और नीले निशान

---

*मलाया की सबसे बड़ी नदी. जिसकी गहराई अत्यधिक है तथा उसमें आये दिन की वर्षा के कारण पानी प्रायः गदलाया रहता है.

बन जायेंगे. वही दर्द.... वही क्रूरता... ..

... ...

रात को जब फातिमा अम्माँ के साथ क्वालालंपुर की बाटू रोड की फुटपाथ पर वासना सुलगा देने वाला पहनावा पहनकर गुजरी तो उसे लगा कि शर्म से उसकी गर्दन टूटकर गिर जायेगी. उसके पास से होकर बहुत से दिवाने उसे ललचाई नजरों से देखकर निकल जाते. उसकी माँ हरेक का मुस्कराकर स्वागत करती चल रही थी कि उसके काँटे में कोई न कोई मच्छी तो फंसे ही गी. चलते चलते वह सड़क के किनारे एक हिन्दुस्तानी के बड़े होटल में घुसी. बुढ़िया के साथ जवान छोकरी. इस दृश्य से होटल में बैठे छोकरियों के भूखों में हलचल फैल गई. गोया शांत और सुस्थिर जल में पत्थर के गिरते ही लहर उठी हो. सब की उन्मत्त आँखें फातिमा पर थीं, पर फातिमा की व्याकुल आँखें टेबिल पर, यही उसकी अम्माँ को बुरा लगा. उसने ऐसे संकेत किए कि वह सिर उठाकर इधर उधर देखे, पर उसके संकेत निष्फल रहे, उसका चेहरा तमतमाया. न जाने क्या सोचकर गम खा गई. उसने होटल के एक छोकरे को दो कॉफी का आर्डर दिया, कॉफी आने पर दोनों पीने लगीं.

पगड़ी वाले एक सरदारजी ने होटल के मालिक घीसा पूर्बिया से कहा:— "यार माल तो घरू है. लगता है आज..... "

"अरे... मारो भी .. ऐसी दिन में कई आती हैं. किसे देखूं किसे न देखूं." घीसा पूर्बिया ने उपेक्षा से कहा.

"यार. ये नखरे कब से ." नशे में गर्क एक दूसरे हिन्दू पंजाबी ने बात उठाई.

घीसा ऊपर से दिखाने के लिए रूखापन दिखा रहा था. लेकिन था पुराना पापी. उसे फातिमा भा गई. वह बुढ़िया से टकराकर आगे बढ़ गया. चोर छोर की भाषा जानता है. सो बुढ़िया होटल-स्वान

(मालिक) की हरकत का अर्थ समझ कर उसके पीछे हो ली. फातिमा भी साथ थी. होटल के सूने पिछवाड़े में पहुंच कर सब तय कर लिया. यह भी कि वह छोकरी को यहाँ पर हर दूसरे दिन ले आया करे. अंत में चीसा ने कुछ डालर के नोट थमा दिए और चलता बना.

बुढ़िया ने घूमकर फातिमा को चूमा और कहा:–

"देखी तेरी उमर की करामात. आंख झपकने के साथ कितने डालर आगये. नौकरी में यह कहाँ? डर मत बेटी. किसी गैरे गैरे के पास तुझे कभी न जाने दूंगी. पहले पहल तुझे कुछ शर्म आयेगी. बादमें सब ठीक हो जायेगा. त्वान (खुदा) तुझे जन्नत दे. देखती जा. तूं कुछ ही दिनों में सुंघाई–सिपुट१ से भी बढ़ जायेगी."

फातिमा मूक थी. कुछ न बोली. वह केवल अपने आतुर नयनों को झपकती रही.

... ...

जालानराजा (राजामार्ग) में स्थित सैक्रेट्रियेट के टावर ने रात के बारह बड़े जोर शोर से बजाये. जिसे होटल की तीसरी मंजिल में बैठी फातिमा ने भी सुना. बैचेन तो वह थी और हो उठी. चूंकि अब जल्दी ही उसका खरीददार आकर, उसके साथ हैवानी का खेल खेलेगा. वह कुसमुसाकर रह जायेगी. उसे अपना उन्मत्त वक्षस्थल चुभने लगा. अपनी उमर खली. क्यों वह इतनी बड़ी हो सकी. ओह! मर जाती...

फातिमा सोफे पर से खड़ी होकर खिड़की के पास आगई. उसने नीचे सड़क पर नजर पसारी. नीचे या तो प्रोषिताएं देखी या ब्लाकान-माती* की पेशावर गरीब वेश्याएं. उसकी आंखों में अंधेरा समाने लगा.

१सुंघाई–सिपुट (जहर की नदी) कहा जाता है कि मलाया में इस नाम की एक वैभवशाली वेश्या है.

*वेश्याओं के रहने का स्थान, जिसका अर्थ मरा हुआ पिछला भाग है.

विचार आया थोड़े दिनों बाद उसे भी इन्हीं में भर्ती हो जाना पड़ेगा. जिन्हें वह दिन में कई बार भयावने रूप में देख चुकी है. दिन होते ही ये गुलफ़ाम लोग—जोकि रात में इनके साथ मौज करते हैं, मन और तन की तृष्णा ठंडी करते हैं—मजाक उड़ाते हैं. मैं भी.... नहीं....नहीं. मां तूने अपने पेट और सुख के लिए यह क्या किया ? क्यों तू अपनी जाया को कुत्तों से नुचवा रही है? अल्लाह खान.... खान बुस्सार...... प्राणांतक पीड़ा का ज्वार .....

फातिमा की सांस जल्दी जल्दी चलने लगी. उसका हिया किसी बेथाह गहराई में डूबने लगा. फिर क्या होगा...? फिर ...? अपनी विवशता पर उसने अपनी छाती को दोनों हाथों से दबाया. कुछ सिकुड़ सी गई. चुन्नी को दांतों में दबाकर फाड़ डाला. इसी हालत में वह गली की ओर पड़ने वाली खिड़की के सहारे आ खड़ी हुई. उसने नीचे अंधेरे में झांका. उसे अचानक न जाने क्या सूझा ? वह उछल कर खिड़की में जा चढ़ी. और क्षण भर बाद नीचे गली का पक्का फर्श चूम रही थी.

इसी वक्त घीसा अपने पैसों की कीमत वसूल करने कमरे में घुसा ही था कि छोकरी उसे खिड़की में से नीचे छलांग मारती नजर आई. पिछले बीस वर्षों से वह ऐसी घटनाएं देखता आ रहा है, अतः वह घबराया नहीं. पर उसे पुलिस के कुत्तों का डर तो था ही. तत्काल नीचे आया. बेटी की प्रतीक्षा में बैठी बुढ़िया से कहा:—

"तेरी छोकरी नीचे कूदकर मर गई है. भाग जा, नहीं तो पुलिस के पंजे में फंसेगी."

बुढ़िया का कलेजा एक बार तो जरूर कांपा होगा. वह चुपचाप उठी और पास के बस स्टाप से जी० टी० सी० की हरी बस में बैठकर चलती हुई.

... ...

घीसा ने पुलिस को फोन किया कि एक लड़की मेरे होटल की तीसरी मंजिल से कूदकर मर गई है.

... ...

जिजांग नोर्थ
केपोंग (मलाया) १६ सितम्बर, १९५४

डालर चाहिये

"डालर चाहिए"

बंटासिंह के कानों में यह स्वर आज भी गूंज जाता है. वह नफरत से जमीन पर थूक देता, उस मलय औरत की सूरत ध्यान में आते ही. उन दिनों बंटासिंह अपने देश से नया नया ही आया था. वह यहां की हरएक चीज को आश्चर्य से देखता रहता था. अर्धनग्न औरतें, लेक गार्डन में आधुनिक सभ्यता में रंगे युवक युवतियों का प्यार, खुले में चुम्बन लेना. सभी कुछ तो आज उसे स्मरण हो आता है. अब तो खैर वे अजीब करिश्मे देखते देखते उसकी नजर अभ्यस्त हो गई. अतः मनमें कोई प्रतिक्रिया नहीं होती. हाँ तो, बात उस मलय औरत की है जो कि उसकी पड़ौसिन थी. जिसने कहा था डालर चाहिए. नाम तो याद नहीं आता, परन्तु उसने उस दिन जो कुछ कहा था वह उसकी स्मृति में बिलकुल तरोताजा है. उसे भूल नहीं सकता. बात यों हुई कि एक दिन बंटासिंह अपने काम से अंधेरा होने पर लौटा. घर आकर जब उसने मोमबत्ती जलाने के लिए माचिस ढूंढी तो न मिली. आखिर हारकर अपनी पड़ौसिन के घर माचिस मांगने गया. और उसे मिल भी गई. यह लेन देन का काम एक मलय औरत से प्रथम बार ही पड़ा. धीरे धीरे पड़ौसिन से गहरी जान—चीन होगई.

एक बार बातों ही बातों में बंटासिंह ने अपनी मलय पड़ौसिन से पूछ लिया— "आची, तुम्हारे बाल बच्चे हैं कि नहीं."

वह बड़े गर्व से बोली—"क्यों नहीं. दो हुए, पर मैंने उन्हें अस्पताल में ही बेच दिया."

यह सुनकर बंटासिंह विस्फारित नेत्रों से उसे देखता ही रह गया. कह कुछ नहीं पाया. यह वह एकाएक मान न सका कि जिगर के टुकड़े बेचे भी जा सकते हैं. कैसा है यह देश ! पड़ौसिन उसकी परेशानी का आभास पाकर बोली— "क्यों आबांग ! तुम्हें अचम्भा हो रहा है ? यहां तो कई ऐसा करते हैं."

"भला क्यों ?" बंटासिंह ने पूछा.

"डालर चाहिए."

"मेरा लक्की (पति) जो कुछ कमा पाता है उससे पूरा नहीं पड़ता. केवल नासी इक्कन (चावल, भात) में ही चुक जाता है. यह कैसे हो सकता है कि मेरे साथ की खूब बनठन कर रहें और मैं न रहूं. सो....

"पर आची, उससे कब तक पूरा पड़ता होगा ?"

"आबांग, इससे क्या ? कुछ दिन तो काम चलता ही है."

"बाद में ?"

"फिर तुम जैसे बहुत से प्याले मिल जाते हैं,"

यह सुनकर बंटासिंह रोमांचित हो उठा. जब उसने पड़ौसिन के चेहरे को देखा तो वासना की विपाक्त भावनाएं उसे रौंद रही थीं. उसने घबराकर गुरु ग्रंथ साहब का मन ही मन जाप किया. मन को साधा, और सोचा— रब ! कहीं यह चंडाल मुझे ही न फंसाले. कहीं का न रहूंगा." इसके दो दिन बाद ही बंटासिंह ने वह किराये का कमरा छोड़ दिया.

...

जिजांग नोर्थ

केपोंग (मलाया) १० मई, १९५४